भारतीय अभिलेखशास्त्र, पुरालिपिशास्त्र एवं कालक्रमपद्धति

Indian Epigraphy, Paleography And Chronology

बी.ए. आनर्स (संस्कृत)–चतुर्थ सेमेस्टर, कोड C–8 च्वाइस बेस्ड क्रेडिट सिस्टम (CBCS) के निर्धारित पाठ्यक्रमानुसार
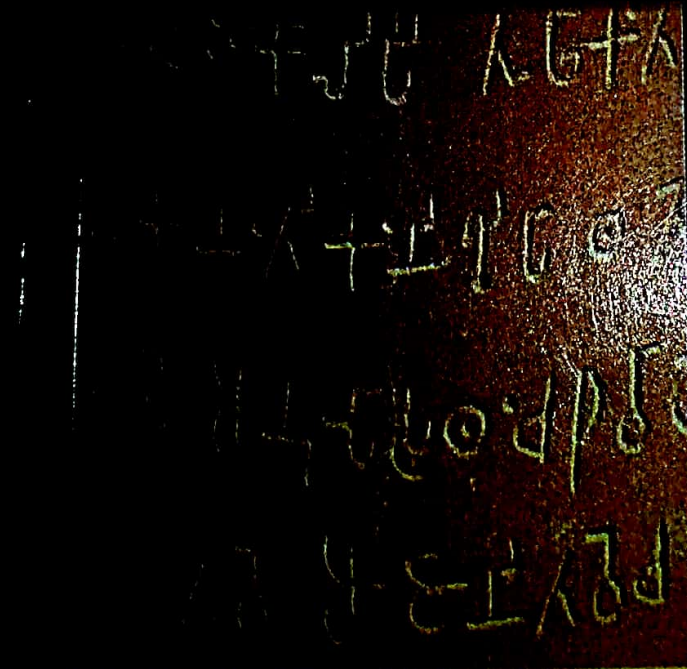
लेखिका

डॉ. अमिता शर्मा

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
636

भारतीय
अभिलेखशास्त्र, पुरालिपिशास्त्र एवं कालक्रमपद्धति

Indian Epigraphy, Paleography And Chronology

बी०ए० आनर्स (संस्कृत)–चतुर्थ सेमेस्टर, कोड C-8 च्वाइस बेस्ड
क्रेडिट सिस्टम (CBCS) के निर्धारित पाठ्यक्रमानुसार

डॉ० अमिता शर्मा
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी-221001

विषय-सूची

वर्ग 'स' : चयनित अभिलेखों का अध्ययन : (Study of Selected Inscriptions)

वर्ग 'द' : कालक्रमपद्धति (Chronology)

• • •

वर्ग 'अ'
अभिलेखशास्त्र (Epigraphy)

प्रथम अन्विति
(Introduction to Epigraphy and Types of Inscriptions)
अभिलेख शास्त्र का परिचय और अभिलेखों के प्रकार

एक परिचय

ग्रीक उद्भव का 'Epigraphy' शब्द 'epi' (ऊपर) graphie (लिखना) से निर्मित है। सरल शब्दों में किसी (ठोस) आधार पर लिखे गए लेख को 'Epigraphy' कहा जा सकता है। विद्वानों ने अभिलेखों के वर्णनात्मक तथा विश्लेषणात्मक अध्ययन को 'Epigraphy' संज्ञा दी है। साथ ही Inscriptions अर्थात् अभिलेखों को Epigraphy का पर्यायवाची माना है।

'Inscription' शब्द लैटिन भाषा के Inscribere से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है 'ऊपर लिखना'। डॉ॰ डी॰सी॰ सरकार के शब्दों में Inscriptions literally means only writing, engraved on some object.

जे॰ एफ॰ फ्लीट इस विषय को इस प्रकार स्पष्ट किया है– The Inscriptions are the notifications, very frequently of an official character and generally more or less of a public nature, which recite facts, simple or complex, with or without dates and were indented to be lasting records of the matters to which they refer"

कालांतर में भारतवासी अपनी प्राचीन लिपियों (ब्राह्मी, खरोष्ठी) का ज्ञान खो चुके थे। इस कारण मुगलों के भारत आने से पूर्व (लगभग 1526 ईस्वी) का शृंखलाबद्ध इतिहास, जिसे आधुनिक काल के विद्वान् वास्तविक इतिहास कह सकें, प्राप्त नहीं था। यद्यपि समय समय पर इतिहास से सम्बन्ध रखने वाले अनेक ग्रंथों की रचना की गई, जो इस विशाल देश पर राज्य करने वाले अनेक राजवंशों में से कुछेक राजवंशों का ही इतिहास प्रकट करते हैं। अपि च अनेक ग्रंथ तिथि विहीन हैं। वस्तुतः ये ग्रन्थ शुद्ध इतिहास की दृष्टि से नहीं अपितु काव्य रूप में अतिशयोक्तिपूर्ण भाषा में लिखे गए थे जो कि ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सिद्ध न हो सके।

मूक किंतु मुखर अभिलेखों का भारतीय संस्कृति और इतिहास के वैज्ञानिक अध्ययन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। अभिलेख इतिहास की पुष्टि तथा शृंखलाबद्ध प्रामाणिक इतिहास प्रस्तुत करने में इतिहासकारों तथा पुरातत्त्वविदों के लिए मार्ग दर्शक का कार्य करते हैं। इस सम्बन्ध में पुरालेख भी पर्याप्त सहायक सिद्ध हुए। वस्तुत: विद्वानों ने पुरालेख अध्ययन की शाखा को Archives तथा अभिलेखों के अध्ययन को Epigraphy कहा है। पुरालेख कागजों, भूर्जपत्रों, ताड़पत्रों आदि पर हस्त लिखित तथा मुद्रित सामग्री से संबंधित है। जबकि अभिलेख प्राचीन काल से ही पाषाणों, शिलाओं मन्दिरों, शिलाखण्डों, स्तम्भों तथा ताम्रपत्र आदि पर उत्कीर्ण किए जाते थे।

प्राचीन भारतीय लिपियों के ज्ञान से अनभिज्ञ भारतीय विद्वान् अभिलेखों पर लिखे गए विषयों की जिज्ञासा को शांत न कर सके। दिल्ली के सुल्तान फिरोजशाह तुगलक ने (लगभग 1351-1388 ईस्वी) अशोक के दो स्तम्भ लेख टोपरा (अंबाला), मेरठ से मंगवा कर दिल्ली में खड़े करवाए। उन उत्कीर्ण लेखों का आशय जानने के लिए सुल्तान ने बहुत से विद्वानों को एकत्र किया। वे उन लेखों को न पढ़ सके।

मुगल बादशाह अकबर (लगभग 1556-1605 ईस्वी) ने भी अभिलेख विषयक जिज्ञासा प्रकट की। इन प्राचीन लिपियों को पढ़ने में असमर्थ विद्वान् विभिन्न कल्पनाएं करने लगे। कोई उन अक्षरों को देवताओं के अक्षर बताता तथा अन्य उसे सिद्धिदायक यंत्र बताते थे। अकबर सम्राट् को विद्वानों ने बताया कि इन लेखों में शहंशाह की प्रशंसा की गई है तथा अकबर के राज्य के अचल होने की भविष्यवाणी की गई है। इसी अज्ञान के कारण ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण प्राचीन शिलालेखों, मन्दिरों ताम्रपत्रों आदि का उचित रूपेण संरक्षण न हो सका।

भारत देश पर अंग्रेजों का राज्य होने के पश्चात् पश्चिमी शैली से अंग्रेजी की पढ़ाई प्रारम्भ होने के साथ संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं का अध्ययन तीव्रगति से होने लगा। कई अंग्रेजों ने केवल विद्यानुराग से संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ किया। फलस्वरूप सर विलियम जोंस ने महाकवि कालिदास विरचित अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का अंग्रेजी अनुवाद किया। इस प्रकार यूरोप में भी संस्कृत का पठन पाठन प्रारम्भ हो गया।

प्राचीन भारतीय लिपियों को पढ़ने का वास्तविक प्रयत्न आज से लगभग 233 वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ जब 1784 ईस्वी में सर विलियम जोंस के प्रयत्न से एशिया के इतिहास, शिल्प, साहित्य आदि के शोध के लिए कलकत्ता में 'एशिआटिक सोसाइटी बंगाल की स्थापना हुई। इसके अगले ही वर्ष चार्ल्स विल्किंस ने बंगला लिपि में नारायण पाल (दसवीं शताब्दी) बादल के प्रस्तर स्तम्भ पर उत्कीर्ण पाल-नृप की

प्रशस्ति को पढ़ा। उसी वर्ष (1785 ईस्वी) पंडित राधा कांत शर्मा ने अशोक स्तम्भ पर देवनागरी लिपि तथा संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण बीसलदेव के दिल्ली-टेपरा स्तम्भ अभिलेख (1220 विक्रम संवत् 1163 ईस्वी) को पढ़ लिया। तदनन्तर क्रमशः सभी प्राचीन लेख पढ़े जाने लगे। अशोक कालीन (ब्राह्मी लिपि) अभिलेखों को पढ़ने का श्रेय जेंस प्रिंसेप नामक यूरोपीय विद्वान् को है। इसके पश्चात् भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास का अन्वेषण तथा शोध प्रारम्भ हुआ। प्राचीन शिलालेख, दानपत्र, सिक्कों, मुद्राओं, मूर्तियों आदि के संग्रह, अध्ययन, अध्यापन तथा शोध कार्य में इतिहासकार तथा पुरातत्त्वविद् आधुनिक समय तक निरन्तर संलग्न हैं।

प्राचीन भारतीय अभिलेख शृंखला में मौर्यवंशीय अभिलेखों में अशोक के 14 शिलालेख, 7 स्तम्भलेख तथा अन्य लघुलेख भी प्रकाश में आए। ये अभिलेख अधिकांशतः प्राकृत भाषा और ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण हैं। मौर्योत्तर कालीन अभिलेखों में प्राकृत भाषा और ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण चेदिवंशीय कलिङ्ग सम्राट् (लगभग ईसा पूर्व प्रथम से द्वितीय शताब्दी) खारवेल का हाथीगुंफा अभिलेख तथा क्षत्रपकालीन अभिलेखों में रुद्रदामन् का गिरनार अभिलेख (72 शक संवत् 150 ईस्वी) ब्राह्मी लिपि तथा संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण विशेष महत्त्वपूर्ण है। गुप्त वंशीय सम्राटों में समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय, कुमारगुप्त प्रथम, स्कन्दगुप्त आदि के ब्राह्मी लिपि तथा संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण अभिलेख इतिहास निर्माण में सहायक सिद्ध होते हैं। गुप्तोत्तर कालीन अभिलेखों में प्रमुख अभिलेख हैं- ब्राह्मी लिपि व संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण हर्षवर्द्धन का बांसखेड़ा व मधुबन ताम्रपत्र (627 ईस्वी 630 ईस्वी) पुलकेशिन् द्वितीय का ऐहोल अभिलेख (556 शक संवत् 634 ईस्वी) देवनागरी लिपि तथा संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण बीसलदेव का दिल्ली टेपरा स्तम्भ अभिलेख (1220 विक्रम संवत्, 1163 ईस्वी)।

इस प्रकार 300 ईसापूर्व से लेकर लगभग चतुर्दश शताब्दी तक संस्कृत अभिलेखों की एक अविच्छिन्न परम्परा प्राप्त होती है। अशोक काल से लेकर आजतक सहस्त्रों अभिलेख प्रकाशित हो चुके हैं। अतीत के ज्ञान में वृद्धि करने में सहायक नवीन अभिलेखों की खोज का निरन्तर प्रयत्न किया जा रहा है।

पाषाण, शिला तथा स्तम्भ आदि पर उत्कीर्ण किए गए अभिलेखों के अध्ययन से पूर्व तीन महत्त्वपूर्ण चरण हैं।

प्रथम चरण में अभिलेख की प्रतिलिपि ली जाती है। जिसे प्रति चित्रण (estampage) कहा जाता है।

द्वितीय चरण में अभिलेख के वर्णों को पहचानना, तदनन्तर उस अभिलेख को पढ़ना। इस चरण को (Deciphering of Inscription) अभिलेख का स्पष्टीकरण कहा जाता है।

तृतीय चरण में ऐतिहासिक, भौगोलिक, सांस्कृतिक आदि दृष्टि से अभिलेख की विश्लेषणात्मक व्याख्या प्रस्तुत की जाती है।

आधुनिक काल में अभिलेख शास्त्र का एक स्वतंत्र विषय के रूप में निरंतर अध्ययन, अध्यापन और शोध कार्य हो रहा है।

अभिलेखों के प्रकार

प्राचीन भारत के धर्मशास्त्र ग्रंथों में लेख्यों के प्रकारों के विषय में विस्तृत विवेचन प्राप्त होता है। स्मृतिचंद्रिका में कहा गया है कि लौकिक व राजकीय भेद से लेख्य दो प्रकार के होते हैं। राजकीय लेख्यों को पुनः चार भागों में विभाजित किया है-

शासनं प्रथमं ज्ञेयं जयपत्रं च तथापरम्।
आज्ञाप्रज्ञापनपत्रे राजकीयं चतुर्विधम्।।

(1-141)

जहां तक अभिलेखों के प्रकार का प्रश्न है इसका उत्तर तो प्राचीन भारतीय अभिलेखों के पढ़े जाने (1784 ईस्वी) तथा सिन्धुघाटी तथा हड़प्पा की खुदाई (1921-1922 ईस्वी) के पश्चात ही स्पष्ट हो सका। वस्तुतः उपलब्ध समस्त अभिलेख धर्मशास्त्र-साहित्य में निर्दिष्ट लेख्यों के प्रकारों से पर्याप्त साम्य रखते हैं।

अभिलेखों के विषय के अनुसार विद्वानों ने अभिलेखों का वर्गीकरण निम्न शीर्षकों के अंतर्गत किया है-

1. व्यापारिक
2. तांत्रिक (ऐंद्रजालिक)
3. धार्मिक व शिक्षात्मक
4. शासन विषयक
5. प्रशस्तिपरक
6. पूजा या समर्पणात्मक
7. दान विषयक
8. स्मारकीय
9. साहित्यिक

1. **व्यापार या व्यवसाय** विषयक प्राचीनतम संकेत सिन्धुघाटी में हड़प्पा और मोहनजोदड़ो से प्राप्त मुद्राओं पर उपलब्ध होते हैं। यह मुद्राएं स्पष्ट रूप से व्यापारिक वस्तुओं की गाँठों तथा वैयक्तिक व्यापारिक वस्तुओं जैसे मिट्टी के बर्तन और अंकित

करने के लिए प्रयुक्त होती थीं। मालवसंवत् (विक्रमसंवत्) 529 (472 ईस्वी) के पट्टवायश्रेणी के मन्दसौर प्रस्तर अभिलेख में रेशमी वस्त्रों के व्यापार का वर्णन है। रेशम के बुनकरों द्वारा स्वनिर्मित रेशम के वस्त्र का आकर्षक विज्ञापन दिया गया है-

स्पर्शवता वर्णान्तरविभागचित्रेण नेत्रसुभगेन।
यैः सकलमिदं क्षितितलमलंकृतं पट्टवस्त्रेण।। (21)

पृथ्वी का संपूर्ण यह भाग उनके द्वारा मानों सुंदर स्पर्श वाले, विभिन्न वर्णों के विभाजन से अलंकृत एवं नेत्रसुभग रेशमी परिधान से अलंकृत है।

2. तांत्रिक (ऐंद्रजालिक) लेख – पुरातत्त्वविदों के अनुसार सिंधु घाटी से प्राप्त मुद्राओं में अधिकांश तांत्रिक मंत्रों से युक्त ताबीजें प्रतीत होती हैं। ये मुद्राएं पूर्णतः पढ़ी नहीं गई हैं। अतः इनकी विषयवस्तु के विषय में निश्चितरूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। संभवतः इन मुद्राओं में अपने संप्रदाय के विशिष्ट पशुओं द्वारा व्यक्त किए जाने वाले देवताओं के नाम तथा उनके प्रति स्तोत्र हैं। यथा निम्नलिखित पशु साधारणतया ताबीजों पर दृष्टिगोचर होते हैं, जो संभवतः उनके सामने लिखे गए देवता को व्यक्त करते हैं-

महिष – यम

ब्राह्मी वृषभ – शिव

शश – चन्द्रमा

व्याघ्र – देवी दुर्गा (मातृदेवी)

3. धार्मिक व शिक्षात्मक लेख – तृतीय शताब्दी ईसापूर्व के अशोक के अभिलेख पूर्णतया धार्मिक व उपदेशपरक हैं। अशोक के चतुर्थ शिला अभिलेख में लिखा गया है कि अशोक के प्रयत्नों से प्रजा में धर्म-आचरण की वृद्धि हुई। भविष्य में भी धर्म की वृद्धि करने का संकल्प लिया गया है। अशोक के अनुशासनों को धर्मलिपि कहा गया है-

'इयं धंमलिपि देवानंपियेन प्रियदसिना राञा लेखापिता।'

अशोक के अभिलेखों में यज्ञ में पशुबलि का निषेध, सभी धार्मिक संप्रदायों को परस्पर सहनशीलता, संयम तथा भावशुद्धि रखने का उपदेश, विहारयात्रा के स्थान पर धर्मयात्रा का प्रारम्भ, धर्म आचरण द्वारा इहलोक और परलोक में कल्याण आदि उपदेश दिए गए हैं। पर्यावरण की दृष्टि से अशोक ने द्वितीय शिलालेख में राज्य में सर्वत्र तथा पड़ोसी राज्यों में जनकल्याण हेतु औषधि उगाने, मार्गों पर छायादार पेड़ लगवाने तथा कुंए बनवाने का वर्णन किया है।

4. शासन विषयक अभिलेख – धर्म व सदाचार के उपदेशों के साथ अशोक के अभिलेखों में शासन विषयक वर्णन भी प्राप्त होते हैं। अशोक राजा और प्रजा में पिता व पुत्र का सम्बन्ध मानते थे। इसी से राजा के प्रति प्रजा की दृढ़ भक्ति हो सकती है। अशोक ने शासनसूत्र स्वयं में केंद्रित रखा था। धर्ममहामात्र, राजुक, प्रादेशिक आदि अधिकारियों की नियुक्ति करना सुशासन के लिए लाभप्रद मानी गई है।

रुद्रदामन् के गिरनार अभिलेख में (150 ईस्वी) महाक्षत्रप रुद्रदामन् के अमात्य सुविशाख द्वारा सुदर्शन झील के मध्य बांध के पुनर्निर्माण के प्रसंग में कहा गया है कि राजा ने अपने ही कोष से बांध का निर्माण करवाया। प्रजा को 'कर' से पीड़ित नहीं किया–

'महाक्षत्रपेन रूद्रदाम्ना वर्षसहस्त्राय गोबाह्मण-हितार्थं धर्म्मकीर्तिवृद्ध्यर्थं च अपीडयित्वा कर-विष्टि-प्रणयक्रियाभिः पौरजानपदं जनं स्वस्मात् कोषात् महता धनौघेन अनतिमहता च कालेन त्रिगुणदृढ़तर-विस्तारायामं सेतुं विधाय सर्वतटे सुदर्शनतरं कारितमिति।

5. प्रशस्त्यात्मक अभिलेखों में चेदिवंशीय कलिङ्ग सम्राट खारवेल का हाथीगुंफा अभिलेख (लगभग द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व शताब्दी) विशेष उल्लेखनीय है। इस अभिलेख में खारवेल की उपलब्धियों का गौरवपूर्ण शब्दों में वर्णन किया गया है। गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त के इलाहाबाद स्तम्भ अभिलेख तथा समुद्रगुप्त कालीन एरण स्तम्भ अभिलेख में क्रमशः समुद्रगुप्त के व्यक्तित्व व यश का वर्णन और उसकी दिग्विजय का वर्णन विस्तार पूर्वक किया गया है। एरण स्तम्भ लेख के अनुसार–

श्रीरस्य पौरुष-पराक्रम-दत्त-शुल्का
हस्त्यश्व-रत्न-धन-धान्य-समृद्धि-युक्ता।
नित्यङ्गृहेषु मुदिता बहु-पुत्र-पौत्र-
सङ्क्रामिणी कुल-वधु व्रतिनी निविष्टा।। (5)

इसी श्रेणी में रुद्रदामन् का गिरनार शिलाभिलेख (150 ईस्वी), चन्द्र का महरौली लौह स्तम्भ अभिलेख, पुलकेशिन् द्वितीय का ऐहोल प्रस्तर अभिलेख महत्त्वपूर्ण है।

6. समर्पणात्मक अभिलेखों का प्रमुख विषय मूर्तियों की स्थापना तथा मन्दिरों का निर्माण होता है। यद्यपि हड़प्पा और मोहनजोदाड़ो से प्राप्त ताबीजों पर पूजापरक लेख होने की संभावना को नकारा नहीं जा सकता तथापि पिप्रावा बौद्ध कलश का लघु अभिलेख इस विधा का प्रथम अभिलेख माना गया है जिसमें भगवान् बुद्ध की अस्थि मंजूषा के प्रतिष्ठापन का वर्णन है। गुप्त सम्राट् चन्द्र के मेहरौली लौह स्तम्भ अभिलेख

में राजा चन्द्र द्वारा विष्णुपद नामक पहाड़ी पर भगवान् विष्णु के मन्दिर के सम्मुख विष्णु के ध्वज को स्थापित करने का वर्णन है–

तेनायं प्रणिधाय भूमिपतिना भावेन विष्णौ मतिम्।
प्रान्शुर्विष्णुपदे गिरौ भगवतो विष्णोर्ध्वजः स्थापितः।।

इसी प्रकार कुमारगुप्त द्वितीय और बंधुवर्मन् कालीन पट्टवाय श्रेणी के मन्दसौर अभिलेख (529 मालव (विक्रम्) संवत्, 472 ईस्वी) में लाट प्रदेश से रेशमी बुनकरों के दशपुर (मन्दसौर) में आकर बसने, उनके द्वारा सूर्यमन्दिर बनवाए जाने तथा कुछ वर्षों बाद इसी मन्दिर का जीर्णोद्धार कराए जाने का वर्णन है।

7. दानात्मक अभिलेख – प्राचीन भारत में गृहस्थ के लिए यज्ञ करना तथा दान देना आवश्यक माना जाता था। दान देने के पश्चात् संपूर्ण विवरण को उत्कीर्ण करवाने की प्रथा थी। अभिलेखों में गुहादान, सभामण्डपों, भोजनशालाओं, जलाशयों, कुओं, स्तूपों, प्रतिमाओं, वेदिकाओं, भूमि, ग्रामों इत्यादि के दान का उल्लेख प्राप्त होता है। गुहादान का उल्लेख बिहार में बरबर पहाड़ी में पाए जाने वाले अशोक के लेख में हैं–

लाजिना पियदसिना दुवाडसवसभिसितेन।
इयं निगोहकुहा दिना आजीविकेहि।।

(बारह वर्ष पूर्व अभिषिक्त हुए प्रियदर्शी राजा के द्वारा यह न्यग्रोध–गुहा आजीविकों के लिए दी गई।) उत्तर गुप्त काल के अभिलेखों का सम्बन्ध विहारों और ब्राह्मणों को दिए गए क्षेत्रों एवं ग्रामों से हैं।

हर्षवर्धन के बांसखेड़ा ताम्रपट्ट अभिलेख (627 ईस्वी) में महाराज हर्षवर्धन द्वारा बालचन्द्र एवं भद्रस्वामी नामक ब्राह्मणों को ग्रामदान देने का उल्लेख है। प्रभावती गुप्ता के पूना ताम्रपट्ट अभिलेख में (लगभग 400 ईस्वी) में उङ्गुण ग्राम दान का वर्णन प्राप्त होता है–

'विदितमस्तु वो यथैष ग्रामोऽस्माभिः स्वपुण्याप्यायनार्थं कार्तिकशुक्लद्वादश्यां भगवत्पादमूले निवेद्य भगवद्भक्ताचार्यचनालस्वामिनेऽपूर्व-दत्त्या उदकपूर्वमतिसृष्टो'

8. संस्मरणात्मक अभिलेखों में अभिलेख की सविवरण तिथि, संस्मृत वीर का वंशक्रम, वीर तथा उसके पूर्वजों की उपलब्धियां, जन्म–मरण आदि संस्मारित घटनाएं उल्लिखित होती हैं। इस प्रकार का प्राचीनतम अभिलेख अशोक का रुम्मिनदेई स्तम्भ अभिलेख है। जिसमें बुद्ध के जन्म स्थान लुंबिनी की अशोक द्वारा यात्रा और इस अवसर पर स्तम्भ व शिलाभित्तिका की स्थापना तथा कर से मुक्ति का वर्णन है।

भानुगुप्त के अभिलेखों (गुप्त संवत् 191,= 510 ईस्वी) में गोपराज की युद्ध भूमि में वीरगति प्राप्त करना तथा उसकी पत्नी का अपने पति की चिता पर सती होना उल्लिखित है।

9. साहित्यिक लेख – प्राचीन भारतीय अभिलेखों में उत्कृष्ट गद्य, पद्य, नाटक आदि को भी उत्कीर्ण करने की परंपरा दृष्टिगोचर होती है। चाहमान राजा विग्रहराज के सम्मान में महाकवि सोमदेव विरचित ललित विग्रहराज नाटक के बड़े-बड़े अंश अभिलेख पर उत्कीर्ण है। दूसरे अभिलेख में 81 पंक्तियां है तथा इसमें अजमेर के विग्रहराज (सोमदेव के आश्रयदाता) द्वारा रचे गए हरिकेलिनाटक के अंश उद्धृत हैं। रुद्रदामन् का गिरनार अभिलेख उत्कृष्ट गद्यकाव्य का उदाहरण है। मन्दसौर का पट्टवाय श्रेणी अभिलेख को लघुपद्य काव्य कहा जा सकता है। यहां दशपुर का वर्णन कालिदास द्वारा मेघदूत में अलकापुरी के वर्णन के सदृश है।

निःसंदेह प्राचीन भारतीय संस्कृत अभिलेख संस्कृत साहित्य के महत्त्वपूर्ण अंग के रूप में विद्यमान हैं।

• • •

द्वितीय अन्विति

(Importance of Indian Inscriptions in the Reconstruction of Ancient Indian History and Culture)

प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति के पुनर्निर्माण में भारतीय अभिलेखों का महत्त्व

प्राचीन भारतीय इतिहास व संस्कृति के प्रमुख स्त्रोत के रूप में अभिलेखों, स्मारकों और मुद्राओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। 1774 ईस्वी में एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल (Assiatic Society of Bangal) की स्थापना के पश्चात् सर विलियम जोंस ने अभिलेखों का संग्रह प्रारम्भ किया, परंतु लिपिज्ञान के अभाव में अभिलेख पढ़े नहीं गए। 1838 ईस्वी में जेम्स प्रिसेप ने ब्राह्मीलिपि को खोज कर इस समस्या का समाधान किया। इस प्रकार प्राचीन इतिहास व संस्कृति के पुनर्निर्माण में सहायक अभिलेखों, स्मारकों व मुद्राओं को पढ़ने में और प्रकाशित करने में ब्यूलर, कनिंघम, फ्लीट, चार्ल्स विल्किंस, कर्नल जेम्सटॉड, चार्ल्समैसन, डी०आर० भंडारकर, डी०सी० सरकार, राजेंद्रलाल मित्र, भगवानलाल इंद्रजी, पंडित राधाकांत शर्मा, भाऊ दाजी, अनंत सदाशिव अल्तकर, मिराशी, दशरथशर्मा और साधुराम आदि विद्वानों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। पुरातत्त्व सम्बन्धी सामग्री भारतीय इतिहास निर्माण में इतनी अधिक सहायक सिद्ध हुई कि पुरातत्त्व एक स्वतंत्र विषय के रूप में प्रतिस्थापित हो गया। पुरातत्त्व उन तथ्यों को प्रकट करता है जो हमें अन्य साधनों से ज्ञात नहीं होते।

अभिलेख मौर्य, शुंग, आंध्र, सातवाहन, कुषाण, क्षत्रप, गुप्त, वाकाटक, चालुक्य, राष्ट्रकूट, परमार, प्रतिहार, चोल, पांड्य, पालसेन आदि वंशों के प्राचीनतम इतिहास व संस्कृति की महत्त्वपूर्ण जानकारी देते हैं।

स्मारक, प्राकारलेख तथा **प्रतिमा लेख** आदि इतिहास निर्माण के समर्थक के रूप में प्रागैतिहासिक युग को प्रस्तुत करते हैं।

इतिहास में कुछ ऐसे काल विभाग हैं जिनका ज्ञान **मुद्रालेखों** से प्राप्त होता है। इनमें **सिंधुघाटी में प्राप्त सिक्के** तथा पश्चिमी भारत के **शक-क्षत्रप सिक्कों** का विशेष महत्त्व है।

अभिलेखों से प्राप्त इतिहास ज्ञान को विभिन्न विभागों में विभाजित कर प्रस्तुत किया जा सकता है-

राजाओं की वंशावलियां - रुद्रदामन् के गिरनार अभिलेख (150 ईस्वी) में रुद्रदामा के साथ उनके दादा चष्टन तथा पिता जयदामा के नाम भी उत्कीर्ण हैं-

तदिदं राज्ञो महाक्षत्रपस्य सुगृहीतनाम्नः स्वामिचष्टनपौत्रस्य राज्ञः क्षत्रपस्य जयदाम्नः पुत्रस्य राज्ञो महाक्षत्रपस्य गुरूभिरभ्यस्तनाम्नो रूद्रदाम्नः....

समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति (तिथिविहीन) में उनके परदादा श्री गुप्त, दादा घटोत्कच तथा पिता चन्द्रगुप्त के अतिरिक्त उनके नाना लिच्छवि तथा माता कुमारदेवी के नामों का भी उल्लेख है। स्कन्दगुप्त के भितरी स्तम्भ अभिलेख में (तिथिविहीन) वंश के सस्थापक से लेकर स्कन्दगुप्त तक सभी सम्राटों के नाम तथा चन्द्रगुप्त प्रथम से लेकर उनकी रानियों के नाम भी उत्कीर्ण है-

श्रीगुप्त के पपौत्र, **श्री घटोत्कच** के पौत्र **श्री चन्द्रगुप्त (प्रथम)** के पुत्र, लिच्छवी दौहित्र, **महादेवी कुमार देवी** के गर्भ से महाराजाधिराज **श्री समुद्रगुप्त** उत्पन्न हुए। समुद्रगुप्त की पत्नी **दत्तदेवी** के गर्भ से **चन्द्रगुप्त (द्वितीय) का जन्म हुआ।** उनकी पत्नी **ध्रुवदेवी** से कुमारगुप्त का तथा कुमारगुप्त से स्कंद गुप्त का जन्म हुआ।

श्रीहर्ष के बासखेड़ा ताम्रपत्र (627 ईस्वी) में नरवर्धन् से लेकर उनके समस्त पूर्वजों के नाम उनकी रानियों के नामों सहित उत्कीर्ण है जो इतिहास निर्माण में सहायक सिद्ध हुए।

राजाओं का विजय वर्णन

रुद्रदामन् के गिरनार अभिलेख में (150 ईस्वी) में स्पष्ट उल्लेख है कि रुद्रदामन् ने यौधेयों का उत्सादन किया तथा तथा दक्षिणधिपति शातकर्णि को दो बार जीत कर मुक्त कर दिया। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में समुद्रगुप्त की दिग्विजय का वर्णन विस्तार पूर्वक किया गया है। विद्वानों ने चन्द्र के मेहरौली लौह स्तम्भ पर उत्कीर्ण लेख को विजय स्तम्भ के रूप में माना है। दिग्विजयी राजा चन्द्र के राज्य की सीमाएं पूरब में बंग, दक्षिण में दक्षिण जलनिधि, उत्तर में वाह्लिक तथा पश्चिम में सिंधुमुख तक उल्लिखित हैं। अपि च बीसलदेव के दिल्ली टोपरा अभिलेख में (1163 ईस्वी) शाकंभरी के चाहमान वंशीय राजा की विजय का वर्णन है। बीसलदेव ने हिमालय और

विंध्य के अंतराल की अपनी विजय स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए इसे टोपरा स्थित अशोक के प्रस्तर अभिलेख पर उत्कीर्ण करवाया था। इस संदर्भ में निम्न पद्य द्रष्टव्य है-

ओं।। अम्भो नाम रिपुप्रियानयनयोः प्रत्यर्थिदन्तान्तरे
प्रत्यक्षाणि तृणानि वैभवमिलत्काष्ठं यशस्तावकम्।
मार्गो लोकविरूद्ध एव विजनः शून्यं मनो विद्विषाम्
श्री मद्विग्रहराजदेव! भवतः प्राप्ते प्रयाणोत्सवे।।

शासनप्रबंध

अशोक के शासन में राजा व प्रजा का परस्पर सम्बन्ध पिता व पुत्र के समान था। अशोक ने शासन सूत्र अपने हाथों में केंद्रित रखा था। उसने जनकल्याण के लिए वृक्षारोपण, तडाग व कूप निर्माण, औषधियों की व्यवस्था, मनुष्यों व पशुओं के लिए चिकित्सा व्यवस्था का भी प्रबंध किया था। अशोक के राज्य में महामात्र, धर्म महामात्र, राजुक, प्रादेशिक आदि अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। गुप्त साम्राज्य अनेक प्रांतों में विभक्त था। प्रांतीय शासक राष्ट्रिक, भौगिक, भोगपति, गोप्ता आदि नामों से जाने जाते थे। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में कुछ अधिकारियों के पदों का उल्लेख है यथा आयुक्त, पुरुष, महादंडनायक, कुमार अमात्य और संधि विग्रहक आदि। उपज का छठा भाग कर के रूप में लिया जाता था। कर लेने वाले अधिकारी को षष्ठाधिकृत कहा जाता था। रुद्रदामन् के गिरनार अभिलेख में उल्लेख है कि सुदर्शन झील पर बांध को प्रजाओं से कर, बेगार, उपहार आदि लिए बिना तथा राजा ने अपने ही कोष से तिगुनी दृढ़ता और विस्तार के साथ बंधवा दिया।

राजाओं का व्यक्तित्व चित्रण

उड़ीसा के चेदिवंशीय कलिङ्ग राजा खारवेल के वीर चरितों का वर्णन हाथीगुंफा अभिलेख में (लगभग द्वितीय शताब्दी ईसापूर्व) में प्राप्त होता है। राजा खारवेल समस्त विद्याओं में निष्णात तथा सभी राजोचित के गुणों से युक्त थे। प्रयाग प्रशस्ति तथा एरण अभिलेख में समुद्रगुप्त के उत्कृष्ट व्यक्तित्व का चित्रण है-

तातेन भक्ति-नय-विक्रम-तोषितेन
यो राजशब्दविभवैरभिषेचनाद्यैः।
सम्मानितः परमतुष्टिपुरस्कृतेन
सोऽयं ध्रुवो नृपैरप्रतिवार्य-वीर्यः।।

एरण अभिलेख (4)

मेहरौली लौह स्तम्भ अभिलेख में चन्द्र का ऐहोल अभिलेख में पुलकेशिन् द्वितीय का (634 ईस्वी), गिरनार अभिलेख में रुद्रदामन् का (150 ईस्वी) तथा दिल्ली टोपरा स्तम्भ अभिलेख में (1163 ईस्वी) में शाकंभरी चौहान नरेश बीसलदेव का उदात्त व्यक्तित्व चित्रित है।

विदेशी राजाओं का उल्लेख—अशोक ने अपनी पश्चिमी सीमा से बाहर बसे विदेशियों के साथ सहज सम्बन्ध स्थापित किए थे। वे थे ऐण्टीओकस नामक यूनानी राजा तथा अन्य सामन्त शासक (द्वितीय शिलालेख)। त्रयोदश शिलालेख से ज्ञात होता है कि अशोक ने अपने प्रशासन में इसी के लिए विदेश विभाग की स्थापना की थी।

तिथिक्रम व कालक्रम निर्धारण इतिहास का अभिन्न अंग है। इतिहास निर्माण में अभिलेखों में उल्लिखित तिथियां तथा संवत् पूर्णरूपेण उपयोगी सिद्ध हुए। महाकवि कालिदास और भारवि के काल निर्धारण में पुलकेशिन् द्वितीय के ऐहोल अभिलेख (634 ईस्वी) का उल्लेख प्रामाणिक माना जाता है। (कृत, मालव) विक्रम संवत्, शक संवत्, (वलभी) गुप्त संवत् तथा हर्ष संवत् आदि का उल्लेख इतिहास निर्माण में सहायक सिद्ध होता है।

भाषा व लिपि का ज्ञान पश्चात्वर्ती भाषा व लिपि के विकासक्रम को जानने में उपयोगी है। अभिलेखों में प्रयुक्त ब्राह्मी लिपि से आधुनिक देवनागरी लिपि के रूप को विकसित माना गया है। अभिलेखों में किया गया संस्कृत और प्राकृत भाषा का प्रयोग तात्कालिक भाषा वैविध्य तथा भाषा के विकास क्रम को जानने में पर्याप्त योगदान प्रदान करता है। लेखन कला की प्राचीनता के प्रामाणिक तथ्य अभिलेखों में प्रमुख रूप से प्राप्त होते हैं।

प्राचीन भारतीय संस्कृति का यथार्थ रूप अभिलेखों में ही दृष्टिगोचर होता है। तात्कालिक सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक आदि स्थिति का चित्रण अभिलेखों में प्राप्त होता है।

सामाजिक चित्रण

अशोक के अभिलेखों में सामूहिक परिवार प्रणाली दृष्टिगोचर होती है। वर्णाश्रम धर्म के प्रसंग में ब्राह्मण (दान) क्षत्रिय (शासक) वैश्य (व्यापार, कृषि, पशुपाल) का वर्णन है। कायस्थ आदि जातियों का भी उल्लेख है। अशोक ने दासों व सेवकों के साथ समुचित व्यवहार करने का आदेश दिया था (नवम् शिला अभिलेख)। राजा एक से अधिक विवाह कर सकते थे। मनोरंजन के साधनों में मृगया, संगीत, द्यूतक्रीडा आदि का उल्लेख है। कुषाण व शक शासकों के अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उन्होंने

हिंदुधर्म, संस्कृति और भाषा के प्रभावित होकर हिंदु नामों और रीति-रिवाजों को स्वीकार कर लिया था। उन्होंने भारतीय शासकों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध भी स्थापित किए थे। पट्टवायश्रेणी के मन्दसौर प्रस्तर अभिलेख के अनुसार स्त्रियां बाहर निकलते समय रेशमी, वस्त्र, स्वर्ण हार, पुष्पमाला आदि धारण करती थीं। कलाकारों का बंधु-बांधवों के साथ दशपुर में आना उनके संयुक्त परिवार प्रणाली का बोध कराता हैं (मालव संवत् विक्रम संवत् 529, 472 ईस्वी)।

आर्थिक अवस्था–अभिलेखों में वर्णित भूमिदान, ग्रामदान, कूपानिर्माण, बांधनिर्माण तथा ताम्रपट्टादि के प्रयोग से तात्कालिक समृद्धि तथा उत्कृष्ट आर्थिक व्यवस्था का ज्ञान होता है। आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होने के कारण रुद्रदामन् ने प्रजा से कर, उपहार व चुंगी इत्यादि भी नहीं लिए। अपने राजकोष से ही सुदर्शन झील पर उत्कृष्ट कोटि का बांध बनवा दिया। नालंदा ताम्रपत्र में भोजन का उच्च स्तर प्रदर्शित है-

सम्यग् बहुघृत-बहुदधिभिः व्यञ्जनैः युक्तमन्नम्।

रुद्रदामा (150 ईस्वी) और स्कन्दगुप्त (लगभग 455-467 ईस्वी) के तिथि विहीन गिरनार स्थित अभिलेखों से जानकारी प्राप्त होती है कि मौर्य चन्द्रगुप्त द्वारा निर्मित, अशोक द्वारा प्रणाली आदि की व्यवस्था से संपन्न, सुदर्शन नामक झील का रुद्रदामा तथा स्कन्दगुप्त द्वारा पुनः संस्कार कराया गया था। व्यापार के क्षेत्र में निगमों और श्रेणियों का उल्लेख प्राप्त होता है। पट्टवायश्रेणी के मन्दसौर अभिलेख (529 मालव संवत् 472 ईस्वी) में सूर्यमन्दिर का निर्माण व पुनरुद्धार, रेशमी वस्त्रों का विज्ञापन तथा उस वस्त्र की देश विदेश में प्रसिद्धि, उत्कृष्ट आर्थिक स्थिति को स्पष्ट करता है।

धार्मिक अवस्था–अभिलेखों में विभिन्न धर्मों व संप्रदायों का उल्लेख प्राप्त होता है। अशोक के अभिलेखों में ब्राह्मण, श्रमण, आजीवक आदि धार्मिक संप्रदायों का चलन था। अशोक ने राष्ट्रधर्म के साथ-साथ व्यक्तिगत जीवन में बौद्ध धर्म को स्वीकार किया था। धार्मिक स्वतंत्रता का अतीव मनोहारी रूप अभिलेखों में परिलक्षित होता है। चेदिवंशीय कलिङ्ग सम्राट् का खारवेल हाथी गुंफा अभिलेख (लगभग द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व) का प्रारम्भ अर्हतों और जैन सिद्धों के प्रति नमस्कार से होता है-

नमो अरहंतानं नमो सव सिधानं
(नमः अर्हद्भ्यः। नमः सर्वसिद्धेभ्यः)

गुप्त सम्राट् वैष्णव धर्म अनुयायी थे। मेहरौली लौह स्तम्भ अभिलेख में राजा चन्द्र द्वारा विष्णु ध्वज की स्थापना का वर्णन है-

तेनायं प्रणिधाय भूमिपतिना भावेन विष्णौ मतिम्।
प्रान्शुर्विष्णुपदे गिरौ भगवतो विष्णोर्ध्वजः स्थापितः।

अभिलेखों का प्रारम्भ मंगलकारी शब्दों सिद्धम्, ओम्, स्वस्ति, श्री, ॐ, स्वस्ति, इत्यादि से किया जाता था। सूर्य, शिव, शक्ति, गणेश आदि देवों की आराधना के अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। लेख की निर्विध्न समाप्ति के लिए मंगलकामना की जाती थी। महाराज संक्षोभ के खोह ताम्रपट्ट अभिलेख (528 ईस्वी) में **'ओम नमो भगवते वासुदेवाय'** उत्कीर्ण है। इसके अतिरिक्त यज्ञ, दान, मन्दिर निर्माण, मन्दिर का जीर्णोद्धार प्रतिमा स्थापना, देव पूजन, उत्सव, व्रत, तीर्थयात्रा आदि का वर्णन प्राप्त होता है।

भौगोलिक स्थिति

अभिलेखों में विभिन्न नगरों, पर्वतों तथा नदियों आदि की स्थिति, राजाओं के यात्रा मार्गो, राज्य विस्तार तथा सीमाओं के उल्लेख के प्रसंग में किया गया वर्णन इतिहास निर्माण में सहायक है। अशोक का साम्राज्य विस्तार पूर्व में बंगाल से लेकर, उत्तर में हिंदु कुश और हिमालय से लेकर दक्षिण में मैसूर के दक्षिणी भाग चित्तलदुर्ग तक फैला था। पूर्व में इसकी सीमा के बाहर कामरूप (आसाम), पश्चिम में यवन नरेश अन्तियोक तथा उसके पड़ोसी तथा उत्तर में हिमालय सीमा बनाता था। दक्षिण में चोल, पांड्य सत्यपुतु, केरल और ताम्रपर्णी इसके राज्य से बाहर थे। रुद्रदामा के गिरनार शिलाभिलेख में निम्न प्रदेशों का वर्णन है–

पूर्वापराकरावन्त्यनूप- नीवृदानर्त्त-सुराष्ट्र-श्वभ्र-मरु- कच्छ-सिन्धु-सौवीर-कुकुरापरांत- निषादादीनां......

ऊर्जयत् पर्वत, सुवर्ण सिकता तथा पलाशिनी नदियों का भी उल्लेख प्राप्त होता है।

चन्द्र के महरौली लौह स्तम्भ लेख में बंगाल, दक्षिण महासागर, विष्णुपद पर्वत का वर्णन है। **'सिंधोः सप्त मुखानि'** के विषय में विद्वानों का मत है कि पूर्व की ओर से सिंधु में मिलने वाली पंजाब की शतद्रु, विपाशा, इरावती, चन्द्रभागा और वितस्ता इन पांच नदियों, पश्चिम की ओर काबुल प्रदेश से आने वाली कुंभा और स्वयं सिंधु इन सात नदियों को सिंधुमुख कहा है।

वीसलदेव के दिल्ली टोपरा स्तम्भ अभिलेख में राजस्थान और पंजाब प्रदेश की तात्कालिक राजनैतिक गतिविधियों पर प्रकाश पड़ता है। विंध्य और हिमालय के अंतराल को वीसलदेव ने जीत लिया था।

साहित्यिक महत्त्व

"ईसा की प्रारंभिक शताब्दियां संस्कृत साहित्य का अंधकार युग था"

मैक्समूलर की इस भ्रांति का निराकरण रुद्रदामा (150 ईस्वी) के गिरनार अभिलेख के प्रकाश में आने से हो गया। संस्कृत गद्य के उत्कृष्ट उदाहरण स्वरूप इस अभिलेख में अलंकार, रीति तथा गद्य के सौंदर्य विधायक सभी गुणों का प्रयोग किया गया है- **स्फुट-लघु-मधुर-चित्र-कांत-शब्द- समयोदारलंकृतगद्यपद्य**-------

समुद्रगुप्त का एरण स्तम्भाभिलेख वसंततिलका छंद में तथा चन्द्र का मेहरोली लौह स्तम्भाभिलेख शार्दूलविक्रीडित छन्द में निबद्ध है। मन्दसौर का पट्टवाय श्रेणि अभिलेख 44पद्यों का एक सुन्दर लघुकाव्य है। अभिलेखों से हरिषेण, वत्सभट्टि, रविकीर्ति आदि अनेक कवियों के नाम प्रकाश में आए। चाहमानवंशी विग्रहराज के काल का सोमदेव रचित 'ललितविग्रह-नाटक' और विग्रहराजकृत 'हरिकेलि-नाटक' प्रस्तरशिला पर अंकित नाट्य साहित्य के सुंदर उदाहरण हैं।

यदि अभिलेख, स्मारक तथा मुद्राओं की पुरातत्त्ववेत्ताओं द्वारा खोज न की जाती तो निश्चय ही भारत अपने अतीत के गौरव से वंचित रह जाता। उपरोक्त समस्त तथ्य प्राचीन भारत के इतिहास व संस्कृति के पुनर्निर्माण में सहायक सिद्ध हुए।

• • •

तृतीय अन्विति

(History of Epigraphical Studies in India)
भारत में अभिलेखशास्त्र विषयक अध्ययन का इतिहास

अभिलेखशास्त्र के अध्ययन के स्वर्ण युग का प्रारम्भ 1838 ईस्वी में जेम्स प्रिंसेप द्वारा ब्राह्मी लिपि के पढ़ने के साथ हुआ। अभिलेखशास्त्रीय अध्ययन तीन चरणों में किया जाता है-

i. प्रस्तर व ताम्रपट्ट पर उत्कीर्ण अभिलेखों का सर्वेक्षण, प्रलेखन (Documentation) प्रतिचित्रण (estampaging)

ii. मुद्राओं का सर्वेक्षण, और प्रलेखन

iii. लेखों का स्पष्टीकरण (पढ़ा जाना, docipHermant) शोध, अध्ययन तथा प्रकाशन

भारतीय पुगतत्त्व सर्वेक्षण विभाग की स्थापना (1861 ईस्वी) के पश्चात् अनुवाद तथा लिप्यंतरण के साथ अभिलेखों के प्रकाशन का कार्य प्रारम्भ हो गया। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग, भारत सरकार के संस्कृति विभाग के अंतर्गत एक सरकारी एजेंसी है जो पुरातत्त्व अध्ययन और सांस्कृतिक स्मारकों के अनुरक्षण के लिए उत्तरदायी है। 1871-1885 में अलेक्जेंडर कनिंघम इस विभाग के प्रथम महानिदेशक (Director general) थे।

भारतीय अभिलेखशास्त्र के अध्ययन को चार्ल्स विल्किन्स, पंडित राधाकांत शर्मा, बैंबीगटन, जेम्स टॅाड, कनिघंम, फ्लीट, ब्यूलर, गौरीशंकर हीराचंद ओझा, हुल्श, डी०सी० सरकार, डॉ० अहमद हसन दानी आदि विद्वानों ने गति प्रदान की।

1832 ईस्वी में जरनल ऑफ द एशियाटिक सोसाईटी ऑफ़ बंगाल पत्रिका के प्रकाशन से अभिलेखशास्त्र के अध्ययन का प्रचार होने लगा। तदनन्तर शिलालेख,

दानपत्र तथा सिक्कों के प्रति विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ। 1861 ईस्वी में ईस्ट इंडिया कंपनी की ओर से जनरल कनिंघम की अध्यक्षता में 'आर्क्योलोजिल सर्वे' नामक संस्था की स्थापना हुई, जिसमें प्राचीन शोध कार्य की पर्याप्त उन्नति हुई। 1872 ईस्वी में डॉक्टर बर्ग्रेस ने इंडियन एंटीक्वेरी (Indian Antquary) नामक भारतीय प्राचीन शोध पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया, जिसमें प्राचीन शोध विषयक लेखों के अतिरिक्त अनेक शिलालेख, ताम्रपत्र तथा सिक्कों का प्रकाशन हुआ। 1877 ईस्वी में जनरल कनिंघम ने उस समय तक प्राप्त मौर्यवंशी राजा अशोक के शिलालेखों का एक अनुपम ग्रन्थ तैयार किया, जिसका नाम था–Corpus Inscriptionum Indicarum (CII) Part I

1925 ईस्वी में ई० हुल्श ने Corpus Inscriptionum Indicarum (CII) भाग–1 का ही द्वितीय संस्करण प्रकाशित किया। इस श्रृंखला के सात भाग प्रकाशित हो चुके है। इनमें गुप्त वंश, वाकाटक, कलचुरी चेदि, शिलाहार, चंदेल तथा परमार वंश के अभिलेख प्रकाशित किए गए है। इन खंडो को तैयार करने में स्टेन कोनो, एल०एच० ल्यूडर्स, डी०आर० भंडारकर, वि०वि० मिराशी, बी०च० छाबड़ा, जी०एस० गै, एच०वी० त्रिवेदी आदि प्रतिष्ठित विद्वानों का योगदान रहा।

1888 ईस्वी में जे०एफ० फ्लीट ने गुप्तों तथा उनके समकालीन राजाओं के शिलालेखों तथा दान पत्रों के संग्रह के रूप में एक ग्रंथ तैयार किया–Carpus Inscriptionum Indicarum Part III

आर्क्योलोजिकल सर्वे की ओर से 1892 ईस्वी में एपिग्राफिया इंडिका (Epigraphia Indica) नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ जिसमें केवल शिलालेख और दानपत्र ही प्रकाशित होते थे। 1902 ईस्वी में जॉन मार्शल की अभिलेखवेत्ता के पद पर नियुक्ति हुई। उन्होंने मोहनजोदाड़ो, तक्षशिला, सांची, राजगिरी तथा सारनाथ आदि स्थानों की खुदाई का कार्य किया। अवैतनिक अभिलेखवेत्ता के रूप में नियुक्त रॉस ने फारसी व अरबी के अभिलेखों को एपिग्राफिया इंडिका में प्रकाशित करवाते रहें। 1887 ईस्वी में प्रथम Annual Repart on Indian Epigraphy का संपादन डॉ० हुल्श ने किया। प्रतिवर्ष इस प्रकाशन के अंतर्गत अभिलेख विषयक विस्तृत जानकारी प्रस्तुत की जाती थी। इस प्रकार लगभग 100 वार्षिक प्रकाशन आ चुके है। 1887 ईस्वी से लेकर 1990 ईस्वी तक के प्रकाशन अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। 1996 ईस्वी के वार्षिक रिपोर्ट का पुनर्मुद्रण 2005 ईस्वी में किया गया।

भारतीय विद्वानों में 1862 ईस्वी में भाऊदाजी ने रुद्रदामन् के गिरनार अभिलेख की प्रतिलिपि, अंग्रेजी पाठ व अनुवाद प्रकाशित किया। इस अभिलेख का प्रथम पाठ यद्यपि जेम्सप्रिंसेप द्वारा तैयार किया गया था, परंतु भाऊ दाजी ने प्रिंसेप के पाठ में संशोधन

किया। उन्होंने यह स्थापित करने का प्रयास किया कि रुद्रदामा चष्टन के पौत्र तथा जयदामा के पुत्र थे।

इसी वर्ष राजेन्द्र लाल मित्र ने बंगाल के सेन राजाओं से सम्बद्ध लेख तथा उत्तर गुप्त कालीन अफसद लेखों का प्रकाशन किया। भाऊ दाजी ने धारवाड़ तथा मैसूर से मिलने वाले अभिलेखों की चित्रात्मक प्रतियां तैयार की। भारतीय विद्वानों में डॉ० अल्तेकर का नाम प्रशंसनीय है जिन्होंने सिक्कों द्वारा भारतीय इतिहास के कई काल विभाग प्रकाशित किए।

1899 ईस्वी में भारत सरकार ने नई व्यवस्था चलाई। जिसमें सारे देश को पांच भागों में बांट दिया–

i. पंजाब, ii. मद्रास, iii. उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश, iv. बम्बई, v. बंगाल व आसाम। इन पांचों केन्द्रों में जो अधिकारी थे, वे प्रांतीय सरकार को इमारतों व टीलों के संरक्षण के विषय में केवल मात्र सलाह देते थे।

प्राचीन शोधकार्य के सम्बन्ध में विभिन्न संस्थाओं तथा सरकार ने प्राचीन शिलालेख, दानपत्र, सिक्के, मुद्राएं, प्राचीनतम मूर्त्तियां तथा शिल्प के श्रेष्ठ नमूने आदि प्राचीन व बहुमूल्य वस्तुओं का संग्रह करना प्रारम्भ कर दिया। ऐसी वस्तुओं के संग्रह एशियाटिक सोसाईटी बम्बई, इंडियन म्यूजियम कलकत्ता, मद्रास, नागपुर, अजमेर, लाहौर, पेशावर, लखनऊ आदि के संग्रहालयों में संग्रहीत हुए। भारतीय राज्यों में प्राचीन शोध सम्बन्धी कार्यालय स्थापित किए गए। भावनगर प्राचीन शोध संग्रह, एपिग्राफिया कर्नाटिका, एंटिक्वीटिज़ ऑफ चंबा स्टेट (Antiquities of Chamba State) नामक ग्रंथों में प्राचीन शिलालेखों, दानपत्रों, सिक्कों आदि प्राचीन वस्तुओं को प्रकाशित किया जाने लगा। विभिन्न अभिलेखवेत्ताओं के द्वारा अभिलेखों से संबंधित **सूचियां** भी प्रकाशित की गई–

- A List of Inscriptions of North India in Brāhmi and its derivative scripts from about 200 AD by डी०आर० भण्डारकर
- A List of Inscriptions of North and South India about 400 AD by कीलहार्न
- A List of Brahmi Inscriptions from the earliest times to about 400 AD with exceptions of those of Ashoka by ल्यूडर्स
- Select Inscriptions डीं०सी० सरकार

भूगोल संबंधित शब्दों के कोष (Gazetteer) भी प्रकाशित किए गए-

- Bombay Gazetteer
- Imperial Gazetteer of India
- Gujrat Gazette
- Maharashtra Gazette

अभिलेखशास्त्र के अध्ययन विषयक कई ग्रंथों का प्रणयन भी किया गया-

- 1918 ईस्वी में गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने 'भारतीय प्राचीन लिपिमाला' ग्रंथ की रचना की।
- जर्मन भारती- विद् जार्ज ब्यूलर ने 'Indische palaeographie' नामक ग्रंथ 1904 ईस्वी में जर्मन भाषा में लिखा। 1966 ईस्वी में 'भारतीय पुरालिपि शास्त्र' के नाम से मंगलनाथ सिंह ने इसका हिंदी अनुवाद प्रस्तुत किया।
- 1965 ईस्वी में डी०सी० सरकार ने Indian Epigraphy ग्रंथ की रचना की।
- 1963 ईस्वी में अहमद हसन दानी रचित Indian Paleography नामक पुस्तक पर्याप्त लाभदायक सिद्ध हुई।

• • •

चतुर्थ अन्विति
(History of Decipherment of Ancient India Scripts)
प्राचीन भारतीय लिपियों के स्पष्टीकरण का इतिहास

भारत वर्ष के विद्वान् ईस्वी सन् की 14वीं शताब्दी से पूर्व की अपने देश की प्राचीन लिपि ब्राह्मी तथा उससे निकली हुई ईस्वी सन् की छठी शताब्दी तक की लिपियों को पढ़ना भूल गए थे। परंतु सातवीं शताब्दी के बाद की लिपियां, संस्कृत व प्राकृत के विद्वान्, जिन्हें प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों को पढ़ने का अभ्यास था, प्रयत्न करने से पढ़ सकते थे। गुप्त व ब्राह्मी लिपि भारतीयों के लिए दुर्बोध थी।

भारत में अंग्रेजों का राज्य होने के पश्चात 15 जनवरी 1784 ईस्वी में सर **विलियम जोंस** की प्रेरणा से एशिया के प्राचीन शिलालेख, ताम्रपत्र, सिक्के इतिहास, भूगोल विभिन्न शास्त्र, रीतिरिवाज, शिल्प आदि विद्या से सम्बन्ध रखने वाले सभी विषयों का शोध करने के निमित्त 'एशियाटिक सोसाईटी (Asiatic society) नामक संस्था की स्थापना भारतवर्ष की तत्कालीन राजधानी कलकत्ता नगर में हुई। अनेक यूरोपियन और भारतीय विद्वान् अपनी अपनी रुचि के अनुसार भिन्न भिन्न विषयों में कार्यरत हुए। इस प्रकार भारत की प्राचीन लिपियों के स्पष्टीकरण का कार्य प्रारम्भ हुआ।

प्राचीन भारतीय लिपियों को तीन भागों में विभक्त कर प्रस्तुत किया जा सकता है-

i. (अर्वाचीन) परवर्ती ब्राह्मी लिपि (लगभग 350 ईस्वी के पश्चात्)
ii. प्राचीन ब्राह्मी लिपि (350 ईसा पूर्व से लगभग 350 ईस्वी तक)
iii. खरोष्ठी लिपि (चतुर्थ शताब्दी ईसा पूर्व से लगभग तृतीय शताब्दी तक)
iv. सिंधुघाटी की लिपि।

अभिलेखशास्त्र के क्षेत्र में विद्वानों का योगदान

अर्वाचीन ब्राह्मी लिपि को पढ़ने में विद्वानों को पुरानी देवनागरी लिपि से सहायता

मिली। इस शृंखला में 1785 ईस्वी में **चार्ल्स विल्किंस** ने दीनाजपुर से प्राप्त बंगाल के राजा नारायणपाल कालीन बादाल (बोदाल) स्तम्भ लेख को पढ़ा। 1785 ईस्वी में ही **पं० राधा कांत शर्मा ने** अजमेर के चाहमान राजा बीसलदेव (विग्रहराज चतुर्थ) के दिल्ली में अशोक के लेख वाले स्तम्भ पर खुदे हुए तीन अभिलेख पढ़े। इनमें से एक विक्रम संवत् 1220 (1163 ईस्वी) वैशाख शुति 15 का है। इनकी लिपि अतिप्राचीन न होने के कारण ये अभिलेख सरलता से पढ़े गए। राजा नारायणपाल के समय के बादाल स्तम्भ लेख के मुख्य अक्षर इस प्रकार हैं–

- अ - ग - घ - श

1785 ईस्वी में **जे०एच० हेरिंग्टन** को बुद्ध गया के समीप 'नागार्जुनी' तथा 'बराबर' की गुफाओं के ऊपर लिखित लेखों से अधिक प्राचीन मौखरी वंश के राजा अनंतवर्मन् के तीन लेख प्राप्त हुए जिनकी लिपि गुप्तकालीन अभिलेखों की लिपि के समान थी। अतः इन अभिलेखों को पढ़ने में पूर्ण सफलता नहीं मिली। **चार्ल्स विल्किंस** ने 1785–1789 ईस्वी में इन तीन लेखों को पढ़ लिया। परिणामस्वरुप गुप्तकालीन ब्राह्मी लिपि के लगभग आधे अक्षरों को पढ़ने में सफलता प्राप्त हुई।

इतिहासकार **कर्नल जेम्सटॉड ने** 1818–1825 ईस्वी तक राजपूताना के इतिहास की खोज की तथा राजपूताना तथा काठियावाड़ में कई प्राचीन अभिलेखों का पता लगाया।

यति ज्ञानचन्द्र की सहायता से इनमें से कुछ अभिलेखों को पढ़ने में आंशिक सफलता प्राप्त हुई।

1828 ईस्वी में **बी०जी० बैबिंग्टन** ने मामल्लपुर के संस्कृत व तमिल भाषा के प्राचीन अभिलेखों को पढ़कर उनकी वर्णमालाएं तैयार की। इससे परवर्ती ब्राह्मी लिपि को पढ़ने की ओर एक नई दिशा प्राप्त हुई।

1834 ईस्वी में **कप्तान ट्रायर** ने इलाहाबाद (प्रयाग) के अशोक के लेख वाले स्तम्भ पर खुदे हुए गुप्तवंशी राजा समुद्रगुप्त के लेख का कुछ अंश पढ़ा। उसी वर्ष **डॉ० मिल** ने स्कन्दगुप्त के भितरी स्तम्भ लेख को पूर्णरूपेण पढ़ने में सफलता प्राप्त की।

1835 ईस्वी में **डब्ल्यू०एच०बाथन** ने वलभी वंश के राजाओं से संबंधित गुजरात से प्राप्त उनके ताम्रपत्रों को पढ़ा।

1837–1838 ईस्वी में **जेम्सप्रिंसेप ने** दिल्ली, कहाँऊ और एरण के स्तम्भों, साँची तथा अमरावती के स्तूपों तथा गिरनार की चट्टानों पर उत्कीर्ण गुप्त लिपि के अभिलेख पढ़े। इस प्रकार **कैप्टन ट्रायर, डा०मिल** तथा **जेम्स प्रिंसेप** के परिश्रम से **चार्ल्स**

विल्किन्स की अपूर्ण वर्णमाला पूर्ण हो गई। परिणाम स्वरुप गुप्तवंशी राजाओं के समय के शिलालेख, ताम्रपत्र तथा सिक्कों को पढ़ने में सुगमता हो गई। मेहरौली के लौहस्तम्भ अभिलेख (चन्द्र) के कुछ अक्षर इस प्रकार हैं–

- चि - यं - - श्रि

प्राचीन ब्राह्मी लिपि का स्पष्टीकरण (लगभग 350 ईसा पूर्व से 350 ईस्वी तक)

प्राचीन ब्राह्मी लिपि अर्वाचीन ब्राह्मी लिपि से प्राचीन होने के कारण पढ़ने में कठिन थी। इस संदर्भ में सर्वप्रथम विद्वानों का ध्यान एलोरा गुहा के ब्राह्मी अभिलेखों ने आकर्षित किया। 1795 ईस्वी में **सर चार्ल्स मेलेट** ने इन अभिलेखों के प्रतिचित्रण तैयार किए। **सर विलियम जोंस** तथा **विलफोर्ड** विद्वान् इन्हें पढ़ने में सफल न हुए।

प्रारम्भिक ब्राह्मी लिपि को पढ़ने का एक अन्य प्रयास **चार्ल्स लैसन** ने किया। उन्होंने 1826 ईस्वी में हिंदू बैक्ट्रियन राजा अगाथोक्लीज की मुद्राओं पर उत्कीर्ण ब्राह्मी लिपि की प्रशस्ति पढ़ी। प्रशस्ति छोटी होने के कारण कुछेक ब्राह्मी अक्षर ही स्पष्ट हुए।

ब्राह्मी लिपि के पूर्णरूपेण स्पष्टीकरण का श्रेय **जेम्स प्रिंसेप को** प्राप्त हुआ।

1834–1835 ईस्वी में **जेम्स प्रिंसेप** में रधिया और मथिया से प्राप्त प्रतिचित्रणों को दिल्ली स्तम्भ अभिलेख से मिलाया। 'ये चारों अभिलेख एक ही है' इस परिणाम से प्रोत्साहित होकर उन्होंने अभिलेखों के वर्णों का विश्लेषण किया। जेम्स प्रिंसेप को यह ज्ञात हुआ कि गुप्त अभिलेखों में विद्यमान मात्राओं के लगाने के सिद्धांत प्रारंभिक ब्राह्मी लिपि में विद्यमान थे। इस प्रकार अभिलेखों के अनवरत तथा सूक्ष्म अध्ययन के द्वारा जेम्स प्रिंसेप ने प्रारंभिक ब्राह्मी लिपि तथा अर्वाचीन ब्राह्मी लिपि की एकता तथा अविच्छिन्नता स्थापित कर दी।

प्राचीन ब्राह्मी में लिखे गए अभिलेखों (प्रमुख रूप से अशोक के अभिलेख) की भाषा अधिकांशतः प्राकृत थी। इस प्रकार भारतवर्ष की समस्त प्राचीन लिपियों की मूल ब्राह्मी लिपि के पढ़े जाने से समस्त अभिलेखों को पढ़ना सुगम हो गया। परिणामस्वरुप ब्राह्मी वर्णो की एक पूर्ण और वैज्ञानिक सूची तैयार हो गई।

खरोष्ठी लिपि के स्पष्टीकरण का इतिहास (ईसापूर्व चतुर्थ शताब्दी से लगभग तृतीय शताब्दी तक)

दाएं से बाएं लिखी जाने वाली खरोष्ठी लिपि को पढ़ने का एकमात्र श्रेय यूरोपीय विद्वानों को है। इनमें **मैसन, जेम्स प्रिंसेप, ई० मोरिस** तथा **जरनल कनिंघम** उल्लेखनीय

है। खरोष्ठी लिपि अभिलेखों, धातुपट्टों, बर्तनों, सिक्कों, पत्थरों, अफगानिस्तान के एक स्तूप से निकले भोजपत्र के एक छोटे से टुकड़े पर तथा खोतन से प्राप्त धम्मपद की भोजपत्र पर लिखी पुस्तक में प्राप्त हुई है। धम्मपद की यह प्रति संभवतः कुषाणकाल में गांधार में लिखी गई थी। इस पुस्तक में जिस उपभाषा का प्रयोग है वह अशोक के शाहबाज गढ़ी के आदेश लेखों की उपभाषा से पर्याप्त समानता रखती हैं। विद्वानों का मत है कि लिपिकों और व्यापारियों की यह लोकप्रिय लिपि थी।

कर्नल जेम्स टॉड ने यवन, शक, पहलव तथा कुषाण सिक्कों का एक विशाल संग्रह किया, जिनका समय ईसा पूर्व 175 से 200 ईस्वी माना गया है। इनकी एक ओर प्राचीन ग्रीक में विरूद था तथा दूसरी ओर खरोष्ठी अक्षरों के लेख थे। इन्हें तब तक पढ़ा नहीं गया था। 1830 ईस्वी में **जरनल वेन्तुरा** को मानिक्याला स्तूप की खुदाई करते समय बहुत से सिक्के तथा दो खरोष्ठी अभिलेख प्राप्त हुए। वे उन्हें पढ़ने मे भी समर्थ नहीं हुए। **सर एलेग्जेंडर वंर्स** ने भी ग्रीक व खरोष्ठी विरुद युक्त अनेक सिक्कों का संग्रह किया, परंतु खरोष्ठी विरुद पढ़ने में सफलता नहीं मिली।

अफगानिस्तान में पुरातत्त्व सम्बन्धी शोध में व्यस्त **मैसन** ने देखा कि सिक्कों के एक ओर ग्रीक लिपि में जो विरुद (नाम) है ठीक वही नाम दूसरी ओर की लिपि में है, तब उन्होंने खरोष्ठी चिन्ह पहचान लिए। **जेम्स प्रिंसेप** ने उन चिन्हों के अनुसार सिक्कों को पढ़ लिया। ग्रीक लेखों की सहायता उन (खरोष्ठी) अक्षरों को पढ़ने का उद्योग करने पर 12 राजाओं के नाम तथा 6 उपाधियों को पढ़ लिया गया। उन्होंने लिपि की दिशा दाएं से बाएं निश्चित की। पहले वे मानते थे कि खरोष्ठी लिपि की भाषा पह्लवी है। परंतु 1838 ईस्वी में उन्हें यह ज्ञात हुआ कि खरोष्ठी लिपि की भाषा प्राकृत है। इस प्रकार ग्रीक लेखों की सहायता से अनेक अक्षर पढ़ लिए गए। जेम्स प्रिंसेप ने खरोष्ठी लिपि के 18 वर्ण निश्चित कर लिए। अन्य 6 वर्ण ई० नोरिस ने पढ़े। जरनल कनिंघम ने शेष अक्षरों को पहचानकर खरोष्ठी की वर्णमाला पूर्ण की। इस प्रकार सिक्कों पर खरोष्ठी वर्णमाला का पढ़ना पूर्ण हुआ। सिक्कों पर उत्कीर्ण विरूदों की पढ़ाई द्वारा अर्जित ज्ञान की सहायता से अशोक के शाहबाजगदी स्तम्भ अभिलेख एवं कांगड़ा के द्विभाषी अभिलेख (ब्राह्मी व खरोष्ठी) कुछेक संयुक्त अक्षरों को छोड़कर संतोषप्रद ढंग से पढ़े गए। शक अभिलेख अधिक सरलता से पढ़े गए।

खरोष्ठी वर्णमाला की तुलनात्मक तालिका बनाने का **श्रेय ब्यूलर** को प्राप्त हुआ।

सिंधुघाटी की लिपि का स्पष्टीकरण

सिंधु घाटी की लिपि के स्पष्टीकरण का प्रयास भारतीय व पाश्चात्य विद्वान्

निरन्तर कर रहे हैं। परंतु इस लिपि का स्पष्टीकरण करने में संतोषजनक सफलता न मिल सकी।

मैरिगी ने सिंधु घाटी की लिपि को भावचिन्हों से निर्मित माना।

हंटर तथा **लैंग्डन** ने सिंधु घाटी की लिपि को ब्राह्मी लिपि का पूर्व रूप सिद्ध करने का प्रयत्न किया। परंतु दोनों लिपियों की समानता केवल बाह्य है। अत: यह मत मान्य नहीं है।

एशिया माइनर की घसीट लिपि में लिखे इत्ती (हिट्टाइट) अभिलेखों को पढ़ने वाले जर्मन विद्वान् **होज़नी** की मान्यता थी कि हिट्टाइट और सिंधु घाटी की लिपि समान थी तथा सिंधु घाटी की लिपि हिट्टाइट लिपि की भांति पढ़ी जा सकती है।

यह निर्णय भी अनेक काल्पनिक कथनों के कारण निर्बल पड़ गए।

सिंधु घाटी की लिपि के स्पष्टीकरण के लिए विद्वान् निरंतर शोध कर रहे हैं। 'Tata Institute of Fandamental Research' नामक संस्थान में सिंधु घाटी की लिपि के स्पष्टीकरण पर शोध-कार्य किया जा रहा है। वांशिंटन विश्वविद्यालय में कंप्यूटर के प्रयोग से इस विषय पर कार्य हो रहा है- Computers unlock more secrets of the mysterious Indus Valley Script.

अभिलेख शास्त्र के क्षेत्र में विद्वानों का योगदान

जेम्स प्रिंसेप (1799 ईस्वी-1844 ईस्वी)

ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारी जेम्स प्रिंसेप 1832 ईस्वी से 1840 ईस्वी तक कलकत्ता की टकसाल के अधिकारी रहे। 1818 ईस्वी में Asiatic Society of Bangal के प्रथम सचिव प्रिंसेप ने दिल्ली, कहोम, एरन, सांची, गिरनार तथा अमरावती के गुप्तकालीन अभिलेखों को पढ़कर अक्षरों की पूर्ण सूची तैयार की। 1837 ईस्वी में सांची की वेदिका तथा द्वार स्तम्भों के छोटे-छोटे लेखों की प्रतिचित्रणों को एकत्र करके प्रारंभिक ब्राह्मी को पढ़ने का सफल प्रयास किया। सांची के कुछ दान लेखों में 'दानं' शब्द के अक्षरों को पहचाना। तत्पश्चात् ब्राह्मी लिपि की लगभग संपूर्ण वर्णमाला का उद्घाटन किया। प्रिंसेप ने 'Modification of sanskrit Alphabets from 528 BC to 1200 AD' के नाम से एक चार्ट बनाया। जिसमें 1800 वर्णों की संपूर्ण भारतीय वर्णमाला प्रस्तुत की। प्रिंसेप के इस चार्ट के साथ पुरालिपि शास्त्र के अध्ययन के इतिहास में महत्त्वपूर्ण कार्य हुआ। इसके पश्चात् प्रिंसेप ने भारतीय अभिलेखों के अध्ययन का कार्य प्रारम्भ किया। ब्राह्मी लिपि और प्राकृत भाषा में उत्कीर्ण अशोक के अभिलेखों को सर्वप्रथम पढ़ने का श्रेय जेम्स प्रिंसेप को जाता है। खरोष्ठी लिपि के

स्पष्टीकरण (पढ़ने) में भी जेम्स प्रिंसेप का योगदान रहा। एकत्रित किए गए अभिलेखों को विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित किया जिनमें Journal of Asiatic Society of Bangal, Asiatic Researches, Indian Antiquary, Ancient India, भारतीय विद्या आदि पत्रिकाएं प्रमुख है। रुद्रदामन् का गिरनार अभिलेख तथा खारवेल का हाथीगुंफा अभिलेख प्रिंसेप ने Journal of Asiatic Society of Bangal में प्रकाशित किए। प्रिंसेप की ब्राह्मी लिपि के स्पष्टीकरण की खोज से भारतीय पुरातत्त्व में एक नए अध्याय का प्रारम्भ हुआ। ब्राह्मी वर्णो की एक पूर्ण व वैज्ञानिक सूची तैयार होने से भारत के प्राचीनतम अभिलेखों को पढ़ना संभव हो गया।

सर एलेग्जेंडर कनिंघम (1814 ईस्वी–1893 ईस्वी)

कनिंघम 1848 ईस्वी में ब्रिटिश सेना के इंजिनियर पद पर नियुक्त होकर लंदन से भारत आए थे। भारतीय इतिहास व पुरातत्त्व में इनकी विशेष रुचि थी। भारतवर्ष के पुराने खंडहरों तथा प्राचीन स्थानों के सम्बन्ध में अन्वेषण करने के लिए एक पदाधिकारी की नियुक्ति की योजना बनाई गई। वह व्यक्ति भारत के धर्म, कला तथा अन्य पुरातत्त्व विषयों को जानने वाला होना चाहिए था। भारत के प्रथम गवर्नर जनरल लॉर्ड कैनिंग (1856–1862 ईस्वी) ने पुरातत्त्व विभाग की स्थापना की तथा कनिंघम इस विभाग के डायरेक्टर जनरल चुने गए। कनिंघम ने 1862- 1865 ईस्वी तक इस पद पर कार्य किया। इन्हें 1871 ईस्वी में पुनः पुरातत्त्व विभाग का सर्वोच्च पदाधिकारी नियुक्त किया गया। कनिंघम ने मध्य भारत के बौद्ध स्मारकों को खोजा। 1860 ईस्वी में भारतीय पुरातत्त्व विभाग में प्रशासकीय और अप्रशासकीय स्तर पर अभिलेखों के संग्रह की चर्चा हुई। कनिंघम ने अभिलेखों को एकत्रित करने की योजना बनाई। 1877 ईस्वी में Corpus Inscriptionum Indicarum के प्रथम खंड में अशोक के अभिलेखों का प्रकाशन किया। भारतीय पुरातत्त्व विभाग की पत्रिका में विभिन्न अभिलेखों तथा शोधपत्रों का प्रकाशन किया। खरोष्ठी लिपि व प्राकृत भाषा के तख्तेबाही अभिलेख, (पाकिस्तान में) कनिष्ककालीन ताम्रपट्ट अभिलेख (पाकिस्तान में प्राप्त), ब्राह्मी लिपि व संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा कुमारगुप्त के अभिलेख प्रकाशित किए। खरोष्ठी वर्णमाला को पूर्ण करने में तथा खरोष्ठी लिपि के स्पष्टीकरण में कनिंघम का विशेष योगदान रहा। कनिंघम के मत में आर्य पुरोहितों ने स्वदेशीय भारतीय बीजाक्षरों के द्वारा ब्राह्मी लिपि की वृद्धि की। 19वी शताब्दी के अंतिम दशक में कनिंघम पुरालिपि सामग्री का अध्ययन करने में संलग्न थे। इन्होंने समस्त भारत का भ्रमण कर पुरातत्त्व सम्बन्धी रिपोर्ट प्रस्तुत की। कनिंघम ने प्राचीन भारत में आने वाले यूनानी व चीनी यात्रियों के भारतविषयक वर्णनों का अनुवाद तथा संपादन बड़ी विद्वता व कुशलता से किया।

भारतीय पुरातत्त्व, इतिहास और भूगोल के विद्वान् के रूप में प्रसिद्ध कनिंघम को भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग का जनक माना जाता है। 1861 ईस्वी में मेजर जनरल के पद से सेवानिवृत्त हुए। कनिंघम ने अनेक पुस्तकों की रचना की। कुछ प्रमुख पुस्तकें इस प्रकार हैं–

The Ancient Geography of India (1871 ईस्वी)

The Book of Indian Eras (1883 ईस्वी)

Coins of Ancient India (1891 ईस्वी)

जॉर्ज ब्यूलर (1837-1898 ईस्वी)

जॉर्ज ब्यूलर पैरिस, ऑक्सफोर्ड, लंदन आदि के बृहद् भारतीय पोथियों के संग्रहों का अध्ययन व अनुशीलन करने के पश्चात मैक्समूलर (जर्मनी के संस्कृत विद्वान्) की प्रेरणा से भारत आए। शिक्षा विभाग बम्बई में नियुक्त होते ही सरकार की ओर से संस्कृत के पंडितों के हितार्थ सर्वप्रथम इन्होंने 'बम्बई संस्कृत सीरीज़' नामक ग्रंथ माला का प्रकाशन प्रारम्भ किया। पैरिस, लंदन, ऑक्सफोर्ड में ही प्राच्य भाषाओं, पुरातत्त्व और संस्कृत भाषा का अध्ययन किया। इन्हें ग्रीक, लैटिन, फारसी, आरमेनियन तथा अरबी भाषा का ज्ञान था। इनके जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण भाग भारतीय हस्तलिखित पोथियों की खोज करने में व्यतीत हुआ। इन्होंने 5000 से अधिक पोथियों (manuscipts) को खोजा। 1866 ईस्वी में सरकार की ओर से बंगाल, बम्बई, मद्रास शोध संस्थान स्थापित हुए तथा ब्यूलर को बम्बई शाखा का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। ब्यूलर द्वारा खोजी गई पोथियां एलफिंसटन कॉलेज (बम्बई) पुस्तकालय में, कुछ बर्लिन विश्वविद्यालय में तथा शेष इंडिया ऑफिस लंदन में सुरक्षित हैं। एलफिंसटन कॉलेज, बम्बई में प्राच्य भाषाओं के प्रोफेसर के रूप में कार्यरत रहे।

पुरालिपि विषयक ब्यूलर की प्रसिद्ध पुस्तक मूल रूप से Indische palaeographie (Indian Palaeography) 1896 ईस्वी में जर्मन भाषा में प्रकाशित हुई। 1966 ईस्वी में इस पुस्तक का हिंदी अनुवाद 'भारतीय पुरालिपि शास्त्र' के नाम से मंगलनाथ सिंह ने किया। इस पुस्तक में 350 ईसापूर्व से लगभग 1300 ईस्वी तक की लिपियों को एक स्थल पर संगृहीत किया गया है। भारतीय पुरालिपि के क्षेत्र में प्रायः 100 वर्षों के अध्ययन के चरमोत्कर्ष के दर्शन इस पुस्तक में होते हैं। ब्राह्मी लिपि के वर्णों की संपूर्ण वैज्ञानिक तालिका बनाने का श्रेय ब्यूलर को ही जाता है। इन्होंने 1878 ईस्वी में प्राचीनतम प्राकृत शब्दकोष का अनुवाद किया। 1895 ईस्वी में On the Origin of Kharoshthi Alphabets पुस्तक लिखी। इसके अतिरिक्त Epigraphia Indica, Archaeological Servey of West Bangal, Indian

Antiquary पत्रिकाओं में अभिलेखों और शोधपत्रों का प्रकाशन व संपादन किया। ब्यूलर ने एक अभिलेखशास्त्री के रूप में भारतीय अभिलेखों का विशेष अध्ययन किया।

John Faithful Fleet (1847- 1917 AD)

जॉन फेथफुल फ्लीट (1847 ईस्वी- 1917 ईस्वी)

प्रसिद्ध अभिलेखशास्त्री फ्लीट इतिहासकार और भाषा वैज्ञानिक के रूप में भी जाने जाते हैं। फ्लीट ने भारतीय प्रशासनिक सेवा (Indian Civil Service 1865 ईस्वी) परीक्षा उत्तीर्ण कर Assistant Collector तथा मजिस्ट्रेट के पदों पर कार्य किया। यूनिवर्सिटी कॉलेज लंदन में संस्कृत भाषा का अध्ययन किया। पालि व कन्नड़ भाषाओं का भी भाषा वैज्ञानिक अध्ययन किया। 1876 ईस्वी में संस्कृत अभिलेखों तथा कन्नड़ी अभिलेखों की श्रृंखला Journal of Bombay Branch of Royal Asiatic Society में प्रस्तुत की। 1883 ईस्वी में भारत सरकार ने आपको प्रथम अभिलेखशास्त्री का कार्य सौंपा। पुरातत्त्व क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के कारण 1886 ईस्वी में भारतीय पुरातत्त्व विभाग (Archeological Servey of India) में प्रथम अभिलेखवेत्ता के रूप में नियुक्त किए गए। 1888 ईस्वी में (Corpus Inscriptionum Indicarum) कार्पस इन्सक्रिपंशनम इन्डिकरम के खंड तीन का संपादन किया। जिसमें प्रारंभिक गुप्त राजाओं तथा उनके उत्तराधिकारियों के अभिलेख विद्यमान है। गुप्तवंश के कालनिर्धारण में फ्लीट का विशेष योगदान रहा।

अभिलेखविषयक अनेक शोध पत्रों का संपादन Indian Antiqury, Epigraphia Indica, Indian Epigraphy इत्यादि पत्रिकाओं में किया।

JRAS में (Journal of Royal Asiatic Society) में पिप्रावा अस्थिकलश, खारवेल का हाथीगुंफा अभिलेख तथा अशोक का सप्तम स्तम्भ अभिलेख प्रकाशित किए। 1897 ईस्वी में भारतीय प्रशासनिक सेवा से सेवानिवृत्त होकर इग्लैंड वापिस चले गए।

रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा (1863 ईस्वी-1947 ईस्वी)

हिंदी लेखक और इतिहासकार गौरीशंकर हीराचंद ओझा का भारतीय पुरालिपि के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान है। राजस्थान के इतिहासकार ओझा ने 'मध्यकालीन भारतीय संस्कृति', प्रसिद्ध इतिहासकार 'कर्नल जेम्स टॉड का जीवन चरित' आदि पुस्तकों की रचना की। 1927 ईस्वी में अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में आपको 'महामहोपाध्याय' की उपाधि से सम्मानित किया गया। ओझा द्वारा विरचित 'भारतीय प्राचीन लिपिमाला' हिंदी भाषा में लिखी गई प्रथम पुस्तक है जिसका सभी भारतीय तथा विदेशी विद्वानों ने लाभ उठाया। यह पुस्तक राजपूताना म्यूजियम अजमेर

से 1894 ईस्वी में प्रकाशित हुई। इसका संशोधित संस्करण 1918 ईस्वी में प्रकाशित हुआ। लेखक ने प्रथम बार एक स्थान पर समस्त भारतीय लिपियों का सुसंबद्ध अध्ययन किया। लेखन कला की प्राचीनता, ब्राह्मी व खरोष्ठी आदि लिपियों की उत्पत्ति तथा प्राचीन लिपियों के पढ़े जाने के इतिहास सदृश महत्त्वपूर्ण विषयों को स्पष्ट किया। ब्राह्मी, खरोष्ठी, गुप्त, बंगला, नागरी आदि समस्त भारतीय लिपियों को 84 लिपिपत्रों के द्वारा प्रस्तुत किया। वर्णों के विकासक्रम तथा वर्णमाला परिचय से अभिलेखों का पठन सरल हो गया। ब्राह्मी व उससे निकली हुई लिपियों के अंकों की बनावट के परिवर्तन को अति स्पष्ट रूप से प्रदर्शित किया है। विद्वानों का कहना है कि लेखक ने अभिलेखों की सहायता से अपने हाथ से ही उनकी प्रतिलिपि ली थी। भारतवर्ष में प्रचलित लगभग 34 संवतों का सूक्ष्म विवेचन विशेष महत्त्वपूर्ण है।

दिनेश चन्द्र सरकार (1907 ईस्वी- 1984 ईस्वी) (डी०सी० सरकार)

डॉ० सरकार एक बहुश्रुत विद्वान् तथा सफल लेखक थे। अभिलेखशास्त्री और इतिहासकार डॉ० सरकार ने भारत और बंगलादेश के अभिलेखों को पढ़ा। 1955 ईस्वी से 1961 ईस्वी तक भारत सरकार द्वारा अभिलेखशास्त्री के रूप में नियुक्त किए गए। आर्क्योजिकल सर्वे ऑफ इंडिया (1949 ईस्वी 1962 ईस्वी) के मुख्य अभिलेखशास्त्री के रूप में कार्य किया। कलकत्ता में प्राचीन भारतीय इतिहास व संस्कृति के प्रोफेसर रहे (1962-1972 ईस्वी)। सर विलियम जोंस मेमोरियल से सम्मानित किए गए। आपने बंगला और अंग्रेजी में लगभग 40 पुस्तकों की रचना की। दो खंडों में Select Inscriptions की रचना की।

Vol- I Sixth century BC to Sixth century A.D

Vol- II Sixth to eighteen century A.D

ये पुस्तके उत्कृष्ट कोटि की अभिलेख संग्रह हैं। अभिलेखों का संपादन लेखक ने ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया है। Indian Epigraphical Glossary, Inscriptions of Ashoka, Indian Epigraphy, Studies in Indian Coins इत्यादि पुस्तकें अभिलेख, इतिहास तथा पुरातत्त्व के अध्ययन की दृष्टि से अत्यंत उपयोगी है। मध्य एशिया, सिलोन, बर्मा, इंडोनेशिया, कंबोडिया आदि देशों में प्राप्त भारतीय अभिलेखों का परिचय प्रस्तुत किया। Indo Muslim Epigraphy, अभिलेखों में प्रयुक्त भाषाएं, लेखनसामग्री, अभिलेखों के प्रकार, विभिन्न संवतों का उल्लेख, तथा तिथिअंकन पद्धति आदि विषयों का सूक्ष्म व विश्लेषणात्मक विवेचन प्रस्तुत किया। प्राचीन भारतीय इतिहास के पुनर्निमाण में अभिलेखों के महत्त्व को पाठकों के समक्ष रखा।

• • •

वर्ग 'ब'
पुरालिपि शास्त्र (Paleography)

प्रथम अन्विति
(Antiquity of the Art of Writing)
लेखन कला की प्राचीनता

भारत की प्राचीन परंपरागत विचारधारा भारतीय इतिहास को श्रुति परंपरा पर ही आधारित मानती है। परंतु भाषा के लिखित रूप के इतिहास को पुरातत्त्वविदों, भारतीय विचारकों तथा विदेशी विद्वानों ने प्रमाणों के आधार पर समय समय पर प्रस्तुत किया।

पाश्चात्य विद्वानों के मतानुसार भारतीय आर्य लोग पहले लेखन कला से परिचित नहीं थे। उनके वेद आदि ग्रंथों का पठन–पाठन केवल कथन श्रवण द्वारा ही होता था। **मैक्समूलर** का मत था कि पाणिनी की अष्टाध्यायी में लेखन कला के संकेत प्राप्त नहीं होते। अत: 400 ईसा पूर्व से पूर्व भारत में लेखन का अस्तित्त्व नहीं था। **बर्नेल** के अनुसार फिनिशियन लोगों से भारतीयों ने लिखना सीखा जिससे दक्षिणी अशोक लिपि (ब्राह्मी) बनी। अत: भारत में लेखन कला का प्रारम्भ चतुर्थ या पंचम शताब्दी ईसापूर्व से पहले नहीं हुआ था। **ब्यूलर** सेमेटिक लिपि से ही भारत वर्ष की प्राचीन लिपि (ब्राह्मी) की उत्पत्ति मानते हैं। उनके मत में ब्राह्मी का विस्तार 500 ईसापूर्व से पहले ही पूर्ण हो चुका था। भारत में सेमेटिक अक्षरों के प्रवेश का समय 800 ईसा पूर्व के लगभग माना गया है। अत: भारत में लिपि प्रवेश का समय ईसा पूर्व दशम् शताब्दी या इससे भी पूर्व माना जा सकता है।

परंतु भारतीय इतिहास पर दृष्टिपात करने से पाश्चात्य विद्वानों के मत स्वत: अमान्य सिद्ध हो जाते हैं। पुराकाल से आज तक प्राप्त संपूर्ण ज्ञानराशि भाषा के लिखित रूप पर ही आधारित है। शिला, धातु, पाषाण, स्तम्भ, ताड़पत्र, भूर्जपत्र आदि लेखन सामग्री को आधार बनाकर पुरातत्त्वविदों ने लेखन कला की प्राचीनता को सिद्ध किया है।

लेखन कला के उद्भव को दैवी उत्पत्ति सिद्ध करते हुए इसके आविष्कार का श्रेय ब्रह्मा को दिया जाता है। नारद स्मृति के अनुसार–

नाकरिष्यत् यदि ब्रह्मा लिखितं चक्षुरूत्तमम्।
तत्रेयमस्य लोकस्य नाभविष्यत् शुभा गतिः।।

बृहस्पति के कथनानुसार-

षाण्मासिके तु समये भ्रान्तिः सञ्जायते यतः।
धात्राक्षराणि सृष्टानि पत्रारूढाण्यतः पुरा।।

बादामी से प्राप्त पाषाण खंड पर ब्रह्मा की एक मूर्ति प्राप्त हुई जिसका समय 580 ईस्वी माना जाता है। इसमें ब्रह्मा के एक हाथ में ताड़पत्रों का समूह है। ये ताड़पत्र लेखन कला का संकेत तो देते ही है, साथ ही ब्रह्मा से लेखन का सम्बन्ध भी प्रकट करते हैं। ब्रह्मा व सरस्वती सदा एक हाथ में पुस्तक धारण किए हुए चित्रित किए गए हैं। मथुरा से सरस्वती की एक मूर्ति प्राप्त हुई जिसके एक हाथ में एक पुस्तक है। विद्वानों के मतानुसार 132 ईस्वी में उत्कीर्ण की गई यह सरस्वती मूर्ति लेखन के अस्तित्व को ही प्रकट करती है। एलिफेंटा गुफाओं में (लगभग पांचवी से नवम् शताब्दी) अर्धनारीश्वर शिव प्रतिमा में एक पुस्तक का चित्रांकन भी लेखन कला के प्राचीन अस्तित्व को सिद्ध करता है। पश्चात्वर्ती मूर्तियों में ताड़पत्र के स्थान पर कागज भी दृष्टिगोचर होता है। जिसमें लिखावट भी दिखाई है। यह लिखावट बाएं से दाएं लिखी गई है।

साहित्यिक प्रमाण भारत में लेखन कला की प्राचीनता के सिद्धांत को और अधिक परिपुष्ट करते हैं।

बौद्ध साहित्य से पांचवी ईसापूर्व तथा छठी ईसापूर्व का इतिहास ज्ञात होता है। यहां लेखन सामग्री, लेखक संघ एवं लेखन रीति आदि की जानकारी प्राप्त होती है।

विनयपिटक तथा निकायों में अक्खरिका (अक्षरिका) खेल का बौद्ध भिक्षुओं को निषेध किया गया है। इस क्रीड़ा में खेलने वाले को अपनी पीठ या आकाश में अंगुलि से लिखा हुआ अक्षर पहचानना पढ़ता था। गृहस्थ आश्रम में लेखन कला द्वारा जीवन निर्वाह करना शुभ माना जाता था। ललितविस्तर के अनुसार बुद्ध एक लिपिशाला गए थे। वहां उनके गुरु विश्वामित्र ने शिक्षा प्रदान की। उन्होंने बुद्ध को सोने की कलम तथा चंदन की तख्ती पर लिखना सिखाया। जातक कथाओं में अनेक व्यक्तिगत तथा आधिकारिक पत्रों, राजकीय घोषणाओं, ऋणपत्रों तथा पत्रकों का उल्लेख है। लेखन कला बौद्ध युग से ही प्रारम्भ हुई, ऐसा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि इससे पूर्व भी निश्चित रूप से इसका कोई आकार अवश्य रहा होगा।

जैन साहित्य में लेखन कला की प्राचीनता के अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। जैन ग्रंथ पण्णावणा सूत्र, समवायांग सुत्त एवं भगवती सुत्त में विभिन्न लिपियों का वर्णन है।

जिनमें दो लिपियों के विषय में समानता है। दोनों में बाएं से दाएं लिखी जाने वाली लिपि को ब्राह्मी तथा दाएं से बाएं लिखी जाने वाली लिपि को खरोष्ठी कहां है। भगवती-सुत्त **नमो बम्भिये लिविए** (नमो ब्राह्मयै लिप्यै) ब्राह्मी लिपि की इस वंदना से प्रारम्भ होता है। जैन भिक्षुओं के लिए लिखना वर्जित था। जो भिक्षु लिखते थे उन्हें कठिन प्रायश्चित करना पड़ता था। इन उल्लेखों से भारत में लेखन कला की प्राचीनता पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

बौद्ध काल से भी पूर्व **ब्राह्मण साहित्य** में भारतीय लेखन कला के अत्यंत प्राचीन होने के साक्ष्य उपलब्ध हैं। **रामायण** और **महाभारत** में प्रयुक्त 'लेख' या लेखन शब्द लेखन कला की प्राचीनता को सिद्ध करते हैं। महाभारत के आदि पर्व में गणेश को महर्षि वेदव्यास के लेखक के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

ओमित्युक्त्वा गणेशोऽपि बभूव किल लेखकः। 1-1-79

वाल्मीकि रामायण में हनुमान अशोक वाटिका में सीता को श्री राम के नाम की अंगूठी देते हैं-

रामनामाङ्कितं चेदं पश्य देव्यङ्गुलीयकम्। 5-36-2

सीता रावण को कहती है कि राम और लक्ष्मण के नामों से अङ्कित बाण लङ्का में बरसेंगे-

इषवो निपतिष्यन्ति रामलक्ष्मणलक्षिताः। 5-21-25

वासिष्ठ-धर्मसूत्र एक वैदिक ग्रंथ है जो मनुसंहिता से प्राचीन माना जाता है। इसमें लिखित पत्रकों को वैध अर्थात् कानूनी प्रमाण माना गया है। (14-10,14-15) कुमारिल (लगभग 750 ईस्वी) के मतानुसार अपने मूल रूप में वासिष्ठ-धर्मसूत्र एक ऋग्वैदिक संप्रदाय का ही अंग था।

कौटिल्य अर्थशास्त्र (चतुर्थ शताब्दी ईसा पूर्व) में इस प्रकार के अनेक उल्लेख है जिनसे यह ज्ञात होता है कि उस समय लेखनकला अत्यंत समृद्ध अवस्था को प्राप्त हो चुकी थी। इसमें उल्लेख है कि चौल कर्म के पश्चात् शिशु लेखन और गणना सीखें-

व्रतचौलकर्मा लिपिं संख्यानं चोपयुञ्जीत। (1-5-2)

अपि च-'**आशुग्रन्थश्चार्वक्षरो लेखवाचनसमर्थो लेखकः स्यात्**' (2-9-28) इत्यादि उदाहरण लेखनकला को ही सूचित करते हैं।

वात्सायन के कामसूत्र में 64 कलाओं में '**पुस्तक-वाचन** को भी एक कला के रूप में प्रस्तुत किया है। वासिष्ठ एवं विष्णु धर्मसूत्र में लिखा है कि कोई नियम जो

न्यायपूर्वक प्रयुक्त होता था, वह लिखा जाता था। गौतम धर्मसूत्र के अनुसार साक्षी जब किसी बात की स्वीकृति दे, इस बात के प्रमाण के लिए साक्षी स्वयं हस्ताक्षर करें। (विष्णुधर्मसूत्र- 26-10,14,15, वासिष्ठ धर्मसूत्र 6-23, गौतम धर्मसूत्र 8-42) महाकवि कालिदास ने लेखनकला के महत्त्व को रघुवंश महाकाव्य में दिलीप के पुत्र रघु का वर्णन करते हुए प्रतिपादित किया है-

सः वृत्तचूलश्चलकाकपक्षकैः
अमात्यपुत्रैः सवयोभिरन्वितः।
लिपेर्यथावद्ग्रहणेन वाङ्मयं
नदीमुखेनैव समुद्रमाविशत्।। (3-2)

अर्थात् मुंडन संस्कार हो जाने पर घने चंचल लटों वाले तथा समान आयु वाले मंत्रियों के पुत्रों के साथ पहले वर्णमाला को लिखना, पढ़ना सीखा। उसके पश्चात् शास्त्र तथा काव्य का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। मानों नदी के मुहाने (मुख) से होकर समुद्र में बैठ गए हों।

विदेशी परंपरा का भारत में लेखन कला की प्राचीनता को सिद्ध करने में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। चीनी विद्वान ह्वेनसांग ने (630 ईस्वी-657 ईस्वी) अपने यात्रा विवरण में लिखा है कि भारतीय वर्णमाला में 47 अक्षर हैं। चीनी यात्री युवान् च्वांग (630-645 ईस्वी) के अनुसार भारत में लेखन कला का आविष्कार बहुत प्राचीन काल में हो चुका था। महमूद गज़नबी के साथ भारत आए अरबी यात्री अलबेरूनी (1017-1030 ईस्वी) ने अपनी पुस्तक किताब-उल-हिंद (भारत की खोज) में लिखा है कि हिंदु लेखन कला भूल चुके थे। ईश्वरीय प्रेरणा से पराशर के पुत्र वेदव्यास ने पुनः पचास अक्षरों की वर्णमाला खोज निकाली। नियार्कस (326 ईसा पूर्व) कर्टियस (327 ईसा पूर्व) मैगस्थनीज़ (306 ईसा पूर्व 299 ईसा पूर्व) तथा सिकंदर के भारत आक्रमण के समय उनके साथ अनेक लेखकों ने ईसा पूर्व चौथी शताब्दी तथा ईसापूर्व तीसरी शताब्दी में भारत में लेखन कला तथा लेखन के प्रयोग में आने वाली वस्तुओं के विषय में उल्लेख किया है। सिकंदर के सेनापति नियार्कस के अनुसार भारतीय रुई व फटे कपड़े से कागज बनाते थे। निश्चितरूपेण इस कागज का प्रयोग लिखने के लिए ही होता था।

पेड़ों की छाल के भीतरी मुलायम हिस्से पर पत्र लिखने का उल्लेख ग्रीक लेखक कर्टियस ने किया है। यह उल्लेख ईसा पूर्व चतुर्थ शताब्दी के अंतिम चरण का है। इन दोनों लेखकों के विवरणों से पता चलता है कि ईसा पूर्व 327- 325 में लिखने के लिए दो पृथक पृथक स्थानीय सामग्रियां काम में आती थीं।

चन्द्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में सेल्यूकस के दूत बनकर आए मैगस्थनीज (306-299 ईसा पूर्व) भारत में रहे। उन्होंने अपने ग्रंथ 'इंडिका' में लिखा है कि भारत में दूरी का ज्ञान कराने तथा पड़ावों की सूचना देने के लिए सड़कों पर पत्थर लगे हुए थे। इन पत्थरों पर एक स्थान से दूसरे स्थान की दूरी लिखी हुई थी। इससे स्पष्ट है कि मौर्य काल में भारत की साधारण जनता निरक्षर नहीं थीं। उन्होंने यह भी लिखा है कि भारतीय लिखित रूप से वर्षफल तैयार करते थे तथा 'स्मृति' के आधार पर न्याय करते थे। यहां स्मृति से तात्पर्य स्मृति साहित्य से है।

परोक्ष प्रमाण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि व्याकरण या भाषा विज्ञान बिना लेखन प्रक्रिया के विकसित नहीं हो सकते। प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप में **अष्टाध्यायी में पाणिनी** ने 'लिपि' और 'लिबि' जिसका अर्थ लिखना है (3-2-21) शब्दों का प्रयोग किया है। यवनानी लिपि का अर्थ कात्यायन और पतंजलि ने 'यवनों' की लिपि किया है। पाणिनी के समय में पशुओं के कानों पर स्रुव, स्वस्तिक आदि धार्मिक चिन्ह तथा 5,8 आदि अंको से अंकित करने का उल्लेख अष्टाध्यायी में प्राप्त होता है (6-3-115) पाणिनि एवं यास्क से पूर्व विद्यमान व्याकरण और निरुक्त के ग्रंथों तथा आचार्यों का उल्लेख लेखन कला की प्राचीनता को सिद्ध करता है। **षड्वेदांग** शिक्षा (उच्चारण पर बल देना) कल्प (विधि-विधानों का उल्लेख) निरुक्त (शब्द-संग्रह व निरुक्ति) व्याकरण, छंद एवं ज्योतिष का ज्ञान लेखन क्रिया के बिना सर्वथा असंभव हैं।

छान्दोग्योपनिषद् में प्राप्त 'अक्षर' शब्द (2-10) तैत्तिरीयोपनिषद् में वर्ण और मात्रा का उल्लेख (1-1) लेखन द्वारा ही स्पष्ट किए जा सकते हैं। 'स्मृति साहित्य' को पढ़ने या पढ़ाने के लिए मौखिक प्रक्रिया के साथ लिखित रूप अवश्य रहा होगा। क्योंकि यहां अनेक व्याकरणादि विशुद्ध कलाओं का वर्णन है जिसके लिए लेखन प्रक्रिया आवश्यक रही होगी।

खगोल विद्या, सूक्ष्म कालविभाजन तथा लाखों की संख्या का गणित, लेखन के बिना नहीं हो सकता था।

यहां एक प्रश्न उपस्थित होना स्वाभाविक है कि यदि लेखन कला पूर्व प्रचलित थी तो पांचवी शताब्दी ईसा पूर्व इसका कोई चिन्ह क्यों नहीं दिखाई देता। इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि यदि लेख पत्थर पर उत्कीर्ण होता तो सुरक्षित रहता। परंतु प्राचीन साहित्य तो अस्थाई भूर्जपत्र आदि पर लिखा जाता था जो सम्भवत: कालांतर में नष्ट हो गया।

इस प्रकार यह नि:संदेह कहा जा सकता है कि लेखन कला अति प्राचीन काल से ही प्रचलित थी।

स्थायी प्रमाणों के रूप में शिलाओं, पाषाणों, स्तम्भों तथा गुफाओं आदि पर उत्कीर्ण लेख लेखन कला की प्राचीनता को सिद्ध करने के प्रबल साक्ष्य है। भोजपत्र, ताड़पत्र, या कागज पर लिखी गई पुस्तकें, विशेषत: भारत की जलवायु में हजारों वर्षों तक नहीं रह सकती थी। परन्तु पत्थर या धातु पर खुदे हुए अक्षरों पर जलवायु, हवा, वर्षा आदि का प्रभाव नहीं पड़ता।

भारत में मौर्यवंशी राजा **अशोक** के समय में (ईसापूर्व तृतीय शताब्दी) अधिक संख्या में अभिलेख प्राप्त हुए हैं। ये अभिलेख ब्राह्मी व खरोष्ठी लिपि तथा प्राकृत भाषा में उत्कीर्ण हैं। शिलाओं, पाषाणों, स्तम्भों तथा गुफाओं की दीवारों पर उत्कीर्ण ये अभिलेख हिमालय के उत्तर से दक्षिण में मैसूर राज्य तक तथा पश्चिम में गिरनार से दक्षिण पूर्व मे धौली तक के क्षेत्र में दूर तक पाए गए हैं। इससे स्पष्ट होता है कि उस समय समस्त भारत वर्ष में लिखने का पर्याप्त प्रचार था। इन शिलालेखों की अभिलेखीय भाषागत विशेषता यह थी कि लिपि के शब्दों में भिन्नता पाई गई है। इससे स्पष्ट होता है कि ये शब्द भिन्न भिन्न समयों में तथा स्थानों में या विभिन्न मनुष्यों द्वारा प्रयोग में लाए गए थे। अशोक ने स्वयं संकेत दिया है कि मैंने पत्थरों पर इसलिए लिखा है जिससे पर्याप्त समय तक ये लेख सुरक्षित रहें- **चिलं थितिका च होतू ती ति** (चिरस्थायी रहे)- (दिल्ली टेपरा द्वितीय स्तम्भ अभिलेख)

अशोक ने अपने अभिलेखों में भिक्षुओं एवं उपासकों के दैनिक पाठ के लिए कुछ ग्रंथों का भी उल्लेख किया है जो अवश्य ही ताड़पत्रों और भूर्जपत्रों पर लिखे गए होंगे।

अशोक से पूर्व भारत में लेखन कला की प्राचीनता को सिद्ध करने के लिए कुछ अन्य शिलालेख भी प्राप्त हुए हैं–

- अजमेर के बड़ली गांव से प्राप्त शिलालेख एक स्तम्भ पर उत्कीर्ण लेख का खंड है जिसकी पहली पंक्ति में **'वीराय भगवते चतुसिते वसे'** शब्द उत्कीर्ण है। जिनका अर्थ है- भगवान महावीर की उनके 84 वें वर्ष में समर्पित। इस आधार पर इस अभिलेख को (527-84) 443 ईसापूर्व के लगभग माना गया है। लेखन कला का पांचवी शताब्दी ईसापूर्व प्रचलन सिद्ध हो जाता है।
- पिप्रावा बौद्ध अस्थिकलश में बुद्ध देव की अस्थियां शाक्य जाति के लोगों ने मिलकर स्थापित की थी। यह समय बुद्ध का निर्वाण काल 487 ईसापूर्व माना गया है। अशोक के अभिलेखों से अधिक प्राचीन एरण मुद्रा विरूद, भट्टिप्रोल- अवशेष मंजूषा, द्राविड़ी अभिलेख, तक्षशिला-मुद्रा-ब्राह्मी-विरूद, महास्थान- प्रस्तर- अभिलेख (बोगरा, बंगलादेश) सोहगारा ताम्रपट्ट (गोरखपुर) अभिलेख अशोक से पूर्व लेखनकला के प्रचलन के साक्षी है।

1921 ईस्वी में सिंधु घाटी सभ्यता की खोज से मिट्टी की सीलों पर प्राप्त उभरे हुए लेखों से भारत में लेखन कला की प्राचीनता कई हजार वर्ष अतीत की ओर बढ़ जाती है। यद्यपि सिंधु घाटी के लेखों को अभी तक विश्वसनीय रूप से पढ़ा नहीं जा सका है तथा इस लिपि का ब्राह्मी तथा खरोष्ठी लिपि से भी साम्य स्थापित नहीं किया जा सका है। परंतु यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि भारत में लगभग 4000 वर्ष ईसा पूर्व लेखन कला प्रचलित थी।

• • •

द्वितीय अन्विति

(Writing Materials, Inscribers and Library)
लेखन सामग्री, उत्कीर्णक व पुस्तकालय

लेखन सामग्री

लेखन सामग्री से अभिप्राय है लिखने का आधार (जिस पर लिखा जाता था) तथा लेखन कार्य के लिये प्रयोग में आने वाली सामग्री।

'लिखने का आधार' विषय को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. लिखने के लिए प्रयुक्त सामग्री
2. उत्कीर्ण करने के लिए प्रयुक्त सामग्री

लिखने का कार्य तालपात्र, भूर्जपत्र, कपड़ा, कार्पासिक, पट, चमड़ा, कागज़, काष्ठ, तख्ती, शलाका, बांस आदि पर किया जाता था।

उत्कीर्ण करने के लिए पाषाण, चट्टान, स्तम्भ, मिट्टी के बर्तन, अस्थिकलश, गुफाएं, ताम्रपत्र, सोना, चांदी, कांसा, पीतल, लोहा, टिन आदि का प्रयोग किया जाता था।

लिखने के लिए प्रयुक्त की जाने वाली लेखन सामग्री

ताड़पत्र–(ताड़, ताल, ताली) ताड़ वृक्ष दक्षिण में समुद्र तट के प्रदेशों में विशेष रूप से पाए जाते हैं। टिकाऊ होने के कारण तथा कम मूल्य में अधिक प्राप्त हो जाने के कारण प्रारंभिक काल से ही ताड़ के पत्र (पत्ते, पर्ण) पुस्तक आदि लिखने के काम में आते थे। बौद्धों की जातक कथाओं में 'पण्ण' (पत्र, पत्ता या पन्ना) का उल्लेख कई स्थानों पर मिलता है। अब तक लिखी गई ताड़पत्र की पुस्तकों में सबसे प्राचीन एक नाटक का एक त्रुटित अंश है। यह द्वितीय शताब्दी के आसपास लिखा हुआ माना जाता है। सातवीं शताब्दी में स्कंदपुराण, नवम् शताब्दी में परमेश्वर तंत्र तथा 906-907 ईस्वी में लंकावतार नामक पुस्तक ताड़पत्रों पर लिखी गई थीं। बाद में सुंदर व सस्ते कागजों के प्रचार के कारण ताड़पत्रों पर लिखने का प्रचार शनैः शनैः कम होता गया।

भूर्जपत्र (भोजपत्र) भूर्जपत्र भूर्ज नामक वृक्ष की भीतरी छाल है जो अधिकांशतः हिमालय में उपलब्ध होती है। भूर्जपत्र से निर्मित पुस्तक को पुस्त, पुस्तक या पोथी कहा जाता था। क्यू कर्टियस (327 ईसा पूर्व) के अनुसार भारत में सिकंदर आक्रमण के काल में भारतीय पेड़ की छाल पर लिखते थे। अमरकोष में भूर्ज को जंगली वस्तुओं के वर्ग में परिगणित किया है– भूर्ज–चर्मि–मृदुत्वचौ।

महाकवि कालिदास ने कुमारसंभवम् महाकाव्य में प्रेमपत्र लिखने के लिए भूर्जपत्र तथा धातुओं के सम्मिश्रण से बनी स्याही का उल्लेख किया है–

न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र भूर्जत्वचः कुञ्जराबिन्दुशोणाः।
व्रजन्ति विद्याधरसुंदरीणामनङ्गलेखक्रियोपयोगम्।।

(1–7)

भूर्जपत्र पर लिखित सबसे प्राचीन कृति खोतान से प्राप्त खरोष्ठी लिपि में लिखे हुए धम्मपद (प्राकृत) का कुछ अंश है जो संभवतः द्वितीय या तृतीय शताब्दी का माना जाता है। संस्कृत में लिखा गया संयुक्तागम सूत्र की अनुलिपि (चतुर्थ शताब्दी) भूर्जपत्र पर ही है।

अगरू वृक्ष की भीतरी छाल का लेखन सामग्री के रूप में प्रयोग उत्तरी पूर्वी भारत में किया जाता था। मुगलशासनकाल में कागज़ के प्रचलन के कारण भूर्जपत्र तथा अगरू वृक्ष की भीतरी छाल का लेखनसामग्री के रूप में प्रयोग अपेक्षाकृत कम हो गया।

कागज़– आठवीं शताब्दी में संस्कृत–चीनी शब्दकोष में 'त्सी' शब्द का अर्थ 'कागज़' बताया गया है। इसी शब्दकोष में 'काकली' या 'काकरी' शब्द भी लिखे गए हैं जो कागज़ का संस्कृत अनुवाद है। ऐसा माना जाता है कि कागज़ को सर्वप्रथम मुगल भारत में लाए। चीन ने 105 ईस्वी में सर्वप्रथम कागज़ का निर्माण किया। 327 ईसा पूर्व भारत में आक्रमण करने के लिए सिकंदर महान के साथ भारत आए यूनानी लेखक नियोर्कस ने लिखा है कि उस समय भारतवासी रुई को कूट कर कागज़ का लिखने के लिए उत्पादन करते थे। वस्तुतः भारतवर्ष की जलवायु में कागज़ बहुत अधिक समय तक सुरक्षित न रह सका।

कपड़ा– रुई का कपड़ा प्राचीन काल में लिखने के लिए प्रयोग में लाया जाता था। पट्टा, पट्टिका तथा करपट्टिका जैसे विशेष नामों का प्रयोग लिखने के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले कपड़े के लिए किया जाता था। कपड़े का उल्लेख निआर्कस, कई स्मृतियों तथा आन्ध्रकालीन कई अभिलेखों में मिलता है। श्रृंगेरी मठ में कुछ गणना सूती कपड़े पर लिखी हुई प्राप्त हुई है। (द्वितीय तृतीय शताब्दी)।

आधुनिक काल में शिक्षित ब्राह्मण परिवारों में सर्वतोभद्र तथा लिंगतोभद्र लिखे पट्टे प्राप्त होते हैं जिनमें मंडलमात्र की स्थापना तथा गृह स्थापना का विवरण प्राप्त होता है। राजपूताना से नागरिक कपड़ों के लंबे टुकड़ों पर पंचांग तैयार करते हैं। कन्नड़ व्यापारी बहियों (खाताविवरण) के लिए एक प्रकार के कपड़े का प्रयोग करते हैं जिसे 'कडितम्' कहते हैं।

रेशम– रेशम का कपड़ा भी सूती कपड़े के समान प्राचीन काल में लिखने के काम में लाया जाता था। जैसलमेर के बृहज्ज्ञानकोष में एक रेशम की पट्टी पर जैन सूत्रों की सूची प्राप्त होती है। रेशम के महंगे होने के कारण लिखने के लिए उसका प्रयोग अधिक प्राप्त नहीं होता।

चमड़ा– प्राकृतिक लेखन सामग्री के सरलता से उपलब्ध हो जाने के कारण चमड़े को लिखने के लिए प्रयोग में लाए जाने के उल्लेख कम ही प्राप्त होते हैं। भारत में धार्मिक दृष्टि से चमड़े को अपवित्र समझा जाता था। परंतु चमड़े को लेखन सामग्री के रूप में प्रयोग करने के कुछेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। बौद्ध ग्रंथों में चमड़ा लेखन सामग्री में गिना गया है। सुबंधु विरचित 'वासवदत्ता' के एक प्रकरण में चमड़े पर लिखने का संकेत है। जैसलमेर के जैन बृहज्ज्ञानकोश में लेखन के लिए तैयार एक कोश चर्मपत्र पर प्राप्त हुआ है।

पतले हाथी दांत के चौकोर टुकड़ों पर लिखे ग्रन्थ बर्मा में मिलते हैं। ब्रिटिश संग्रहालय में इसके दो नमूने हैं।

काष्ठ– भारत में पत्थर की स्लेटों के प्रचार से पूर्व विद्यार्थी लकड़ी के पाटें (तख्ती) पर लिखते थे। इन पर लिखने का काम कुछ ही समय पूर्व तक पाठशालाओं तथा ग्रामों में किया जाता था। हिसाब, ज्योतिष, गणित, जन्मकुंडलियां, वर्षफल इत्यादि काष्ठ फलक पर लिखे जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। बौद्धों की जातक कथाओं में विद्यार्थियों के काष्ठ फलक पर लिखने का उल्लेख मिलता है। दण्डी के दशकुमारचरितम् में इस बात का उल्लेख है कि अपहारवर्मन् ने सोए हुए राजकुमारों के नाम अपनी घोषणा एक रोगन लगे फलक पर लिखी थी। (द्वितीय उच्छ्वास)

बांस की शलाकाएँ बौद्ध भिक्षु पासपोर्ट के रूप में प्रयोग में लाते थे।

उत्कीर्ण करने के लिए प्रयुक्त की जाने वाली सामग्री

पाषाण– किसी भी घटना को चिरस्थाई बनाने के लिए उन घटनाओं को चट्टान, स्तम्भ, शिला, मूर्तियों के आसनपीठ, पत्थर के पात्रों या उनके ढक्कनों पर उत्कीर्ण कर दिया जाता था। अशोक ने अपने द्वितीय शिलालेख में इस बात का उल्लेख किया

है---**चिलं थितिका च होतू ती ति।** (चिरस्थितिका च भवतु इति) शिलालेखों पर राजकीय घोषणा, दान, जीर्णोद्धार, साहित्यिक व धार्मिक लेख आदि लिखे जाते थे। चौहान राजा विग्रहराज (बीसलदेव) का हरकेलिनाटक की दो शिलाएं और सोमेश्वर कवि रचित 'ललितविग्रहराज' नाटक की दो शिलाएं अजमेर के राजपूताना संग्रहालय में विद्यमान है। एरण की वराहमूर्ति पर हूण राजा तोरमाण की प्रशस्ति उत्कीर्ण है। गुफाओं में उत्कीर्ण लेखों में खारवेल का हाथी गुम्फा अभिलेख महत्वपूर्ण है। आयागपट्ट जैन धर्म से संबंधित एक चार कोना प्रस्तर है जिस पर लेख व मूर्तियां उत्कीर्ण की जाती थी।

ईंटों पर भी एक अक्षर या कुछ अधिक अक्षर लिखे हुए प्राप्त हुए हैं। भारत के उत्तर पश्चिमी सीमा प्रांत में ईंटों पर बौद्ध सूत्र लिखे पाए गए हैं।

स्फटिक के टुकड़े पर खुदा हुआ एक छोटा लेख भट्टि प्रोलू के स्तूप से प्राप्त हुआ है।

शिवलिङ्ग पर उत्कीर्ण किया गया कुमारगुप्त प्रथम कालीन अभिलेख उत्तरप्रदेश के फैज़ाबाद जिले में प्राप्त हुआ।

पत्थर और ईंट की अपेक्षा **धातुओं** पर उत्कीर्ण किए गए लेख अधिक स्थायी और सुंदर प्रतीत होते हैं। लिखने के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली धातुंऐ सोना, चांदी, पीतल, कांसा, लोहा, टिन व ताम्रपत्र है।

सोना बहुमूल्य होने के कारण प्रयोग में कम लाया जाता था। बौद्धों के जातक ग्रंथ में उल्लेख है कि धनी व्यापारियों के महत्वपूर्ण पारिवारिक विवरण, राजकीय घोषणापत्र तथा नीतिवाक्यों को सोने के पत्रों पर ही उत्कीर्ण किया जाता था। तक्षशिला के खंडहरों के पास गंगू में सोने का एक पत्र मिला था जिस पर खरोष्ठी लिपि में एक लेख लिखा गया है। बर्मा में दो सोने की पत्तियां प्राप्त हुई हैं जिन पर बौद्धों के सिद्धांत, श्लोक तथा पालिभाषा में गद्य लिखा है। इसकी लिपि चतुर्थ–पंचम शताब्दी के लगभग है। बाण के अनुसार हर्षचरित में हर्ष की राजचिन्ह युक्त मुद्रा सोने की थी।

चांदी के पत्रों पर भी लेख खुदवाए जाने के कुछेक उल्लेख प्राप्त होते हैं। हस्तलिपि के कुछ नमूने तथा सरकारी लेख जो चांदी पर लिखे हुए हैं, अभी तक सुरक्षित रखे गए हैं। 'तक्षशिला (पाकिस्तान) रजत–पट्ट अभिलेख' (136 विक्रम संवत्) खरोष्ठी लिपि तथा प्राकृत भाषा में लिखा हुआ अभिलेख चांदी के पत्र पर लिखा गया है। कुछ जैनमन्दिरों में चांदी की प्लेटें आज भी लगी हुई हैं जिनपर 'नमोंकारमंत्र' तथा तांत्रिक सिद्धांत आदि लिखे हुए हैं।

पीतल को पूर्ण अभिलेख लिखने के लिए कम ही प्रयोग में लाया जाता था।

जैनधर्म से संबंधित पीतल की बड़ी मूर्तियों के नीचे तथा छोटी मूर्तियों के पीछे लिखा हुआ प्राप्त होता है। जैन मन्दिरों में पीतल की कुछ प्लेटें प्राप्त हुई जिन पर धार्मिक सिद्धांत लिखे हैं।

कांसे की घंटियों पर मन्दिरों में दान देने वाले का नाम तथा दान देने की तिथि भी लिखी जाती है। पीतल के समान कांसा भी पूर्णरूप से लिखने में प्रयोग में कम लाया जाता था।

लोहा यद्यपि औज़ार, हथियार तथा अन्य आवश्यकताओं के लिए बहुत अधिक प्रयुक्त होता था लेकिन लिखने के लिए लोहे का प्रयोग कम किया जाता था। दिल्ली (मेहरौली) के कुतुबमीनार के समीप लोहे के स्तम्भ पर राजा चन्द्र का लेख उत्कीर्ण है जिसे पांचवी शताब्दी का माना गया है। लोहे का लिखने में कम प्रयोग किए जाने का कारण संभवतः यह रहा होगा कि लोहे पर जंग लग जाता है। केवल मेहरौली लौह स्तम्भ अभिलेख ही एकमात्र ऐसा उदाहरण है जिस पर जंग नहीं लगा।

टिन पर लिखी गई एक बौद्ध पुस्तक ब्रिटिश संग्रहालय में रखी गई है। संभवतः भारत में कम पाए जाने के कारण टिन लिखने में कम प्रयुक्त होता था।

ताम्रपत्र का प्रयोग स्थायी लेख लिखने के लिए किया जाता था। लेखन सामग्री के रूप में समस्त धातुओं में तांबा सबसे अधिक प्रयोग में लाया जाता था। राजाओं तथा सामन्तों की ओर से मन्दिर, मठ, ब्राह्मण, साधु आदि को दान में दिए हुए गांव, खेत, कुएं आदि के लेखों को प्राचीन काल से ही तांबे पर खुदवा कर दिया जाता था। कुमारगुप्त (प्रथम) के दो दामोदरपुर अभिलेख (124 गुप्त संवत्, 128 गुप्त संवत्) ताम्रपट्ट पर ही लिखे गए हैं जिनका सम्बन्ध भूमिदान से है। हर्षवर्धन के बांसखेड़ा व मधुबन ताम्रपट्ट अभिलेखों (22 हर्षसंवत्, 25 हर्षसंवत्) में ग्राम–दान का उल्लेख है। मौर्य काल में राजकीय आदेश को तांबे पर खोदे जाने का भी उल्लेख प्राप्त होता है। ऐसी प्रसिद्धि है कि सायण के वेदभाष्य भी तांबे के पत्रों पर खुदवाए गए थे। प्रायः साहित्यिक कृतियों को सुरक्षित रखने के लिए ताम्रपत्रों का प्रयोग किया जाता था। त्रिपती (मद्रास) में ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण तेलगु पुस्तकें प्राप्त हुई हैं।

रांगे पर खुदाई का एकमात्र उदाहरण ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित बौद्ध हस्तलिपि है।

लिखने के लिये प्रयुक्त की जाने वाली साधन सामग्री

ताड़पत्र, भूर्जपत्र, कपड़े और कागज़ आदि पर **स्याही** से लिखा जाता था। स्याही के लिए भारतीय शब्द मषि या मषी है जिसे मसि या मसी भी कहा जाता है। मसी से

अनेक प्रकार के पीसे (लकड़ी के) कोयले का बोध होता है जिसमें पानी, गोंद, शक्कर आदि मिलाकर तैयार किया जाता था। बाण (लगभग 620 इस्वी) तथा इसके पूर्ववर्ती सुबंधु ने (हर्षचरितम्, वासवदत्ता) में 'मसि' का उल्लेख किया है। 'दवात' के लिए कोषों में **'मेलामन्दा' मेलान्धु, मेलान्धुका मसिमणि** शब्द प्रयुक्त है। पुराणों में मसिपात्र, मसिभांड, मसिकूपिका शब्दों का प्रयोग भी प्राप्त होता है। अंधेर स्तूप की अस्थिमंजूषा (ईसापूर्व द्वितीया शताब्दी) में धातु कलश पर स्याही से लिखने का प्राचीन उदाहरण प्राप्त होता है। स्याही का व्यापक प्रयोग खोतान से प्राप्त प्रथम शताब्दी ईसापूर्व की हस्तलिपियों से प्राप्त होता है।

काली स्याही (रोशनाई) के अतिरिक्त **लाल, पीली** आदि रोशनाईयों का प्रयोग भी किया जाता था। **सोने और चांदी की स्याही** के उल्लेख भी प्राप्त हुए हैं। अजमेर के पुस्तक संग्रह में बहुत सुंदर अक्षरों में लिखा हुआ एक कल्पसूत्र है जिसका प्रथम पत्र सुवर्ण की स्याही से लिखा हुआ है। 17वीं शताब्दी में यह पुस्तक लिखी गई थी।

'लिखने की उपकरणिका' का सामान्य नाम **लेखनी** है। पेंसिल, कूची, नरकट तथा लकड़ी की कलम आदि लेखनी के ही रूप हैं। ललितविस्तार में उल्लिखित **'वर्णक'** सीधी–सी एक छोटी लकड़ी है जिसके मुंह पर किसी प्रकार की तिरछी कटाई नहीं होती। दशकुमारचरितम् (दण्डी) में वर्णवर्तिका शब्द का प्रयोग मिलता है जिसका अर्थ संभवतः 'रंगीन पेंसिल' होगा। इसके अतिरिक्त तूली, तूलिका, शलाका आदि शब्दों का प्रयोग भी किया गया है। यूनानी शब्द कलम (kalamos) का अरबी के माध्यम से भारत में प्रचलन हुआ। सरकंडे बांस या लकड़ी के टुकड़ों की कलम बनाकर स्याही से लिखा जाता था।

उत्तरी भारत में ताड़पत्र पर लिखने के लिए स्याही का प्रयोग किया जाता था। ताड़पत्रों को पहले यंत्र से खोदा जाता था। दक्षिण शैली के अर्थात् लोहे की तीक्ष्ण अग्रभाग वाली शलाका (सुई) से दबाकर बनाए गए अक्षरवाली पुस्तक 15वी शताब्दी के आसपास प्राप्त हुई। संभवतः दक्षिण की ऊष्म हवाओं से इस प्रकार की पुस्तकें शीघ्र नष्ट हो जाती थी।

उत्कीर्ण करने के लिए प्रयोग की जाने वाली साधन-सामग्री

ताम्रपत्र पर सर्वप्रथम स्याही से स्पष्ट और सुंदर अक्षरों में लिखने के पश्चात् लोहार या सुनार अक्षरों को **छैनी की** सहायता से खोदते थे। कभी कभी नक्काशी करने के लिए औज़ार को भी प्रयोग में लाया जाता था। वस्तुतः पत्थर अथवा धातु आदि कठोर पदार्थों पर लेखन के लिए बरछे, छैनी आदि औज़ारों का प्रयोग किया जाता था।

शिलालेखों पर प्रशस्ति लिखते समय सर्वप्रथम उसे चिकना व चमकीला बनाया जाता था।

अभिलेख उत्कीर्ण करने से पूर्व कवि या लेखक सुंदर भावों को प्रस्तुत करता था। ततः अन्य लेखक स्याही से चट्टान, पाषाणादि पर लिखता था। उस लेख को कारीगर छैनी से पत्थर पर उत्कीर्ण (खोदना) करता था। लेख की पंक्तियों को सीधा रखने के लिए पत्थर पर रेखाएं खींच दी जाती थी। खुदाई के समय पत्थरखंड टूट जाने से जो खड्डा बन जाता था उसे पूरित करने के लिए धातु का प्रयोग किया जाता था।

पुस्तकालय

सिंधु घाटी की सभ्यता का एक अंग पुस्तकालय भी माना गया है। पुरातत्त्वविदों ने यह प्रमाणित किया है कि 2500-1500 ईसा पूर्व प्राचीन भारतीय पुस्तकालयों का अस्तित्व था। प्राचीन पुस्तकालय अध्ययन और अध्यापन के प्रमुख केंद्र थे। प्राचीन भारत में तीन प्रकार के पुस्तकालयों का उल्लेख प्राप्त होता है–

i. तक्षशिला, नालंदा तथा काशी अध्ययन केंद्रों के पुस्तकालय
ii. राजाओं के महलों में विद्यमान पुस्तकालय
iii. भारतीय मन्दिरों में स्थापित पुस्तकालय

पुस्तकालय का भारतीय नाम '**भारती-भांडागार**' था, जो जैन ग्रंथों में प्राप्त होता है। इसके लिए कभी-कभी 'सरस्वती-भाण्डागार' शब्द भी प्रयोग में प्राप्त होता है। ऐसे भाण्डागार मन्दिरों, विद्यामठों, विहारों, राज-दरबारों तथा धनी व्यक्तियों के घरों में हुआ करते थे। प्राचीन काल में हस्तलिखित पुस्तकों तथा ताम्रपत्रों की सुरक्षा व संरक्षण के लिए उन्हें पुस्तकालयों तथा ग्रंथागारों में रखा जाता था। ताड़पत्रों और भूर्जपत्रों पर लिखे ग्रंथों को इन पत्रों के आकार के लकड़ी के टुकड़ों के मध्य रखकर इन्हें सूत (धागा) से बांध दिया जाता था तथा टीन के बक्सों में बंद कर रख दिया जाता था।

हस्तलिखित ग्रंथ व ताम्रपत्रों के संरक्षण के लिए विभिन्न सरस्वती भाण्डागारों तथा पुस्तकालयों का उल्लेख प्राप्त होता है। मध्यकाल के राज्यपुस्तकालयों में **धारा नरेश भोज (11 वीं शताब्दी) का पुस्तकालय प्रसिद्ध** है। विद्याधर द्वारा की गई नैषधीय टीका चालुक्य राजा बीसलदेव या विश्वमल्ल (1242-1262 ईस्वी) के **भारती भांडागार** (पुस्तकालय) की थी। **बोन विश्वविद्यालय के पुस्तकालय** में रामायण की एक हस्तलिखित प्रति है। अलवर, बीकानेर, जम्मू, मैसूर, तञ्जावर के राजाओं के अपने समृद्ध पुस्तकालय होने के उल्लेख प्राप्त होते हैं। गुजरात, राजस्थान और मराठा प्रदेश तथा उत्तर व मध्यभारत में अनेक ब्राह्मणों और जैन मुनियों के पुस्तकालय आज भी विद्यमान है।

मध्यकाल में एक विशाल पुस्तकालय बनारस में था। कवीन्द्राचार्य सरस्वती (16वीं-17वीं शताब्दी) के इस पुस्तकालय में वामन रचित काव्यालंकार का एक हस्तलिखित ग्रंथ प्राप्त हुआ, जिस पर मुगल सम्राट राजकुमार सलीम (जहांगीर) (1605-1627 ईस्वी) की शासकीय मोहर लगी थी।

आज भी भारत में कई ऐसे विशाल पुस्तकालय है जहां संस्कृत पांडुलिपियां सुरक्षित है।

तञ्जावर (तंजौर) के राजकीय **सरस्वती महल पुस्तकालय** में लगभग 25000 पांडुलिपियां सुरक्षित है। इस पुस्तकालय की स्थापना 1700 ईस्वी के लगभग की गई थी। नायक शासकों ने राजकीय पुस्तकालय के रूप में इसे प्रारम्भ किया था। यह एशिया के प्राचीनतम पुस्तकालयों में से एक है। जम्मू कश्मीर के **रघुनाथ मन्दिर पुस्तकालय** में अनेक प्राचीन ग्रंथों को रखा गया है। जम्मू के डोगरा वंश (1835-1860 ईसवी) द्वारा इस पुस्तकालय की स्थापना की गई थी। प्राचीनतम पांडुलिपियों का संग्रह स्वर्गीय महाराजा रणबीर सिंह (1857 ईस्वी) द्वारा किया गया था। **सरस्वती भवन पुस्तकालय, वाराणसी** में लगभग सवा लाख संस्कृत की हस्तलिखित पोथियाँ संग्रहीत है। यह पुस्तकालय संपूर्णानंद विश्वविद्यालय के परिसर में स्थित है। यहां विद्यमान पाण्डुलिपियां स्वर्णपत्र, कागज, ताड़पत्र, भोजपत्र (भूर्जपत्र) एवं काष्ठ पर लिखी गई हैं। इसकी स्थापना 1894 ईस्वी में हुई थी।

इसके अतिरिक्त कलकत्ता संस्कृत कॉलेज, भंडारकर ओरियण्टल पुस्तकालय पूना, गवर्नमेंट ओरियण्टल लाइब्रेरी मैसूर, बड़ौदा सैंट्रल लाइब्रेरी, अड्यार लाइब्रेरी मद्रास, ओरियण्टल मैन्यूस्क्रिप्ट लाइब्रेरी उज्जैन, बीकानेर संस्कृत लाइब्रेरी, तथा त्रिवेंद्रम राजकीय पुस्तकालय में अनेक हस्तलिखित पोथियों को सुरक्षित रखा गया है। दिल्ली में स्थित राष्ट्रीय संग्रहालय (National Meuseum) भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण, पुस्तकालय (Archeological servey of India, Library) तथा (National Archives) पुस्तकालयों में भी प्राचीन ग्रंथों का संग्रह किया गया है।

उत्कीर्णक (लेखक, संगतराश)-जब कोई रचनाकार या लेखक, लेख या कविता के रूप में अपने भाव प्रकट करता है या घोषणा, सूचना आदि को लिखकर तैयार करता है तो अन्य लेखक उस कृति, लेख, घोषणा या सूचना को पाषाण या ताम्रपत्र पर लिखता है। उन लिखे हुए अक्षरों को कारीगर संगतराश, लोहार, शिल्पिन् छैनी तथा औजारों से उत्कीर्ण करते थे। पेशेवर लेखक या उत्कीर्णक द्वारा लेख तैयार करते समय अशुद्धियों का होना स्वभाविक होता था। कभी-कभी निरक्षर या अर्धशिक्षित संगतराश व सुनार आदि के द्वारा पाषाण या ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण करते समय कुछेक

त्रुटियां हो जाती थी। अशोक ने चतुर्दश स्तम्भ अभिलेख में स्पष्ट कहा है कि यदि लिखित सामग्री में अपूर्णता आदि दोष हों तो वह लिपिकर (लेखक) का अपराध समझना चाहिए-

तत्र एकदा असमातं लिखितं अस देसं व संछाय कारणं व अलोचेत्पा लिपिकरापरधेन व।

(तत्र एकदा असमाप्तं लिखितं स्यात्-देशं वा संख्याय कारणं वा आलोच्य लिपिकरापराधेन वा)

अति प्राचीनकाल में भारत में पेशेवर लेखक या लेखकों की जाति थी जिसका काम लिखकर जीविकोपार्जन करना होता था। 'लेखक' नाम दक्षिणी बौद्ध आगमों में प्राप्त होता है। अभिलेखों में लेखक से तात्पर्य उस व्यक्ति से माना गया है जो प्रलेख तैयार करता था जिसे ताम्रपत्र या पाषाण पर लिख कर खोदा जाता (उत्कीर्ण) था। परंतु हस्तलिखित पुस्तकों की प्रतिलिपियां तैयार करने वाले को भी लेखक कहा जाता था। पेशेवर लेखक को लिपि कर या लिबिकर भी कहा जाता था, जो चतुर्थ शताब्दी ईसापूर्व प्रचलित था। अशोक अपने चतुर्दश आदेश लेख में इस शब्द का प्रयोग क्लर्कों के पदनाम के रूप में करता है।

वस्तुतः लिपिकर प्राचीन काल में क्लर्क का ही पर्याय था। सातवीं आठवीं शताब्दी के वलभी के अभिलेखों में लेखकों को 'दिविरपति' कहा है। फारसी भाषा में देवीर, दिविर लेखक को कहते हैं। लेखकों के अन्य पदनाम जो अभिलेखों में मिलते हैं- करण, करणिक, करणिन् और धर्मलेखिन् हैं। विद्वानों ने करण को कायस्थ का पर्याय माना है। वस्तुतः पत्थर पर खोदे ज़ाने के लिए प्रशस्तियां या काव्य पेशेवर लेखकों को दी जाती थी। पुनः उत्कीर्णकों के रूप में कारीगर, लुहार, सुनार, शिल्पिन् आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। कलिंग के शासनपत्रों में उत्कीर्णकों को अक्षशालिन्, अक्षशालिक, अखशालिन्, अखशाल कहा गया है। आधुनिक काल में अक्साले सुनारों की जाति मानी जाती है।

संधि व युद्ध के कार्यालय का प्रमुख अधिकारी दिविर (लिपिक) या लेखक भी होता था। धरसेन के वलभी ताम्रपत्र अभिलेख से (252 गुप्त वलभी संवत् 571 ईस्वी) में यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है- **लिखितं संधिविग्रहिकस्कन्दभटेन।**

आदित्यसेन के अफसद शिलालेख के लेखक का नाम सूक्ष्मशिव है-

सूक्ष्मशिवेन गौडेन प्रशिस्तर्विकटाक्षरा।।

बीसलदेव के दिल्ली- टेपरा स्तम्भ अभिलेख को गौड़वंश में जन्मे कायस्थ माहव के पुत्र श्रीपति ने लिखा था-

लिखितमिदं राजादेशात् ज्योतिषिक-श्री-तिलकराज-प्रत्यक्षं गौडान्वय-कायस्थ-माहव-पुत्र -श्रीपतिना।

पट्टवायश्रेणि के मन्दसौर अभिलेख के रचयिता वत्सभट्टि थे- **पूर्वा चेयं प्रत्यनेन रचिता वत्सभट्टिना।**

समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तम्भ अभिलेख प्रशस्तिकाव्य के रचयिता खाद्यटपाकिक-महादण्डनायक ध्रुवभूति के पुत्र सान्धिविग्रहिक कुमारामात्य महादण्डनायक हरिषेण है।

• • •

तृतीय अन्विति

(Introduction to Ancient Indian Scripts)

प्राचीन भारतीय लिपियों का परिचय

'लिपि' का शाब्दिक अर्थ है– लिखित या चित्रित करना। ध्वनियों को लिखने के लिए जिन चिन्हों का प्रयोग किया जाता है वही लिपि (script) कहलाती है। हिंदी भाषा की लिपि देवनागरी तथा अंग्रेजी भाषा की लिपि को रोमन कहा जाता है। अशोककालीन अभिलेखों की भाषा प्राकृत तथा लिपि ब्राह्मी है। गुप्तकालीन अभिलेखों की भाषा संस्कृत तथा लिपि गुप्तकालीन ब्राह्मी है।

अशोक के अभिलेखों में लिपियों के नामों का कोई संकेत नहीं है। मौर्यवंशी राजा अशोक के लेखों तथा ईसापूर्व चतुर्थ शताब्दी से लेकर ईसा की तृतीय शताब्दी तक के सिक्कों से यह ज्ञात होता है कि उस समय दो लिपियां प्रचलित थी। एक देवनागरी लिपि की तरह बाएं से दाएं लिखी जाने वाली सार्वदेशिक लिपि और दूसरी फारसी की तरह दाएं से बाएं लिखी जाने वाली एकदेशिक लिपि।

जैनों के पन्नवणासूत्र और समवायग सूत्र में 18 लिपियों के नाम मिलते हैं जिनमें सर्वप्रथम नाम बंभी (ब्राह्मी) है। भगवतीसूत्र में 'बंभी' (ब्राह्मी) को नमस्कार करके सूत्र का प्रारम्भ किया गया है **नमो बंभीए लिविए**। बौद्धों की संस्कृतपुस्तक 'ललितविस्तार' में परिगणित 64 लिपियों में प्रथम नाम ब्राह्मी लिपि का तथा द्वितीय स्थान पर खरोष्ठी लिपि है। इस प्रकार प्राचीन भारतीय अभिलेखों में प्रयुक्त लिपियां ब्राह्मी और खरोष्ठी ही हैं। 1921-22 ईस्वी में हड़प्पा व मोहनजोदाड़ों (पाकिस्तान) की खुदाई से एक अन्य लिपि प्रकाश में आई जो सिंधु घाटी की लिपि के नाम से प्रसिद्ध हो गई। इन लेखों की भाषा के विषय में पुरातत्त्वविद् शोधकार्य कर रहे हैं।

सिन्धु घाटी की लिपि

सिंधु घाटी की सभ्यता के अन्वेषण से पूर्व केवल ब्राह्मी लिपि ही भारत की प्राचीनतम लिपि मानी जाती थी। परंतु 1921-22 ईस्वी में मोहनजोदाड़ो और हड़प्पा

की खुदाई के पश्चात् एक नवीन सभ्यता प्रकाश में आई। सिंधु घाटी सभ्यता के प्रायः सभी लेख आकार में बहुत छोटे तथा मुहरों पर ही है। ये एक या दो पंक्तियों में लिखे गए हैं। इन लेखों की भाषा के विषय में कोई भी जानकारी नहीं है। ईसापूर्व तृतीय सहस्राब्दी (3000 पूर्व) की इस लिपि को पढ़ना एक कठिन व चुनौतीपूर्ण कार्य है। सिंधुघाटी की लिपि की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों ने तीन मत प्रस्तुत किए हैं–

i. द्रविड़ उत्पत्ति
ii. सुमेरी उत्पत्ति
iii. स्वदेशी उत्पत्ति

द्रविड़ उत्पत्ति का सिद्धांतः–सिंधु घाटी की लिपि की उत्पत्ति द्रविड़ संस्कृति से मानने वाले विद्वानों एच०हे रास तथा जॉन मार्शल का कहना है कि सिंधुघाटी की खुदाई में मिली सभ्यता द्रविड़ सभ्यता है। परंतु यह मत मान्य नहीं सिद्ध हुआ क्योंकि सिंधुघाटी की लिपि के लेख उत्तरभारत में मिले दक्षिण भारत में नहीं। ईसापूर्व 7000 वर्ष तक बोले जाने वाली या लिखित तमिल भाषा के विषय में कोई जानकारी नहीं हैं।

सुमेरियन उत्पत्ति का सिद्धांतः–एल० ए० बैडेल और डॉक्टर प्राणनाथ का मत है कि सिंधुघाटी लिपि का विकास सुमेरियन लिपि से हुआ। उनके मतानुसार 4000 ईसा पूर्व में सिंधु घाटी को सुमेरियनों ने नई बस्ती बनाया था। उन्होंने ही अपनी भाषा व लिपि का परिचय दिया। परंतु ऐतिहासिक परंपरा के अनुसार मेसोपोटामिया में सुमेरियन सभ्यता के प्रवर्तक स्वयं भी कहीं बाहर से आए थे तथा अपने साथ कृषि, धातुकार्य तथा लेखनकला लाए थे। सुमेरिया में लेखनकला का परिचय देने वाले देवताओं और शूरवीरों के नाम भी भारतीय ही अधिक प्रतीत होते हैं। अतः यह मत भी विश्वसनीय नहीं माना गया।

स्वदेशी उत्पत्ति का सिद्धांत– डॉ० के० एन० दीक्षित आदि विद्वानों का विचार है कि सिंधु घाटी में जाति और संस्कृति में आर्यों से ही सम्बन्ध रखने वाले असुर (पणि) लोग निवास करते थे। ये लोग ही सिंधु घाटी की लिपि के जनक हैं। प्राचीन एलमाईट, सुमेरियन तथा मिस्र की लिपियों से इस लिपि की समानता इस कारण से है क्योंकि उपर्युक्त तीनों ही देशों में यह लिपि भारत से गई है। विद्वानों का मत है कि बहुत से सिंधुघाटी के चिन्ह प्राचीन मिस्र की लिपि से अद्भुत मेल खाते हैं सुमेरिया तथा प्रोटो एलमाईट से मिलने वाले चिन्ह भी सिंधुघाटी की लिपि में प्राप्त होते हैं। परंतु वस्तुस्थिति यह है कि आधार सूत्रों के अभाव के कारण इस लिपि की उत्पत्ति या उत्पत्ति स्थान के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता।

सिंधुघाटी की लिपि में कुछ चिन्ह चित्र सदृश है?
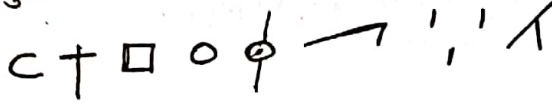
कुछ चिन्ह अक्षरों के समान हैं-

खरोष्ठी लिपि

दाएँ से बाएँ लिखी जाने वाली खरोष्ठी लिपि को पढ़ने का एकमात्र श्रेय यूरोपीय विद्वानों मैसन, जेम्स प्रिंसेप, लैसेन और कनिंघम को है। खरोष्ठी के जिस रूप का आज हमें पता वह अल्पायु, मुख्य रूप से पुरालेखों में प्रयुक्त उत्तरपश्चिमी भारत की लिपि है। ये पुरालेख प्रायः पूर्वी अफगानिस्तान तथा उत्तरी पंजाब (पाकिस्तान) के उस प्रदेश में मिले है जिसका प्राचीन नाम गांधार था। इसके अतिरिक्त तक्षशिला, मुल्तान, दक्षिण में मथुरा (मधुरा) से भी प्राप्त हुए हैं। अब तक उपलब्ध प्रलेख प्रमाणों से यह प्रतीत होता है कि खरोष्ठी लिपि ईसा पूर्व चतुर्थ शताब्दी से ईसा की लगभग तृतीय शताब्दी तक प्रचलित थी। इसके सबसे प्राचीन अक्षर इरानी सिग्लोई (चान्दी का सिक्का) पर मिले हैं तथा सबसे बाद के अक्षर संभवतः गांधार मूर्तियों तथा कुषाण अभिलेखों पर प्राप्त होते हैं। 668 ईस्वी के चीनी विश्व कोष फा-वान-शू-लिन के उल्लेखों से विदित होता है कि खरोष्ठी लिपि का ज्ञान बौद्धों ने पर्याप्त समय तक सुरक्षित रखा।

खरोष्ठी लिपि पूर्वकाल में बैक्टिरियन, इण्डो-बैक्टिरियन, आर्यन, बैक्ट्रो, पालि, उत्तर-पश्चिमी भारतीय, काबुलियन आदि नामों से जानी जाती थी। 'खरोष्ठी' इस नाम के लिए कई कारण दिए जाते हैं। यथा इस लिपि का आविष्कारक फारसी था जिसका नाम खरोष्ठ (खर ओष्ठ अर्थात् गर्दभ तुल्य ओष्ठ) था क्योंकि इस लिपि का प्रयोग खरोष्ठ लोग करते थे, जो भारत की उत्तरी-पश्चिमी सीमाओं के असभ्य लोग थे।

खरोष्ठी संस्कृत के शब्द 'काशगर' का स्वरूप माना गया है जो मध्य एशिया में एक देश था और इस लिपि का अंतिम केंद्र था। अन्य मत है कि खर (गर्दभ) की पोस्त (खाल) पर लिखे जाने के कारण यह लिपि ईरानी प्रदेश में 'खरपोस्ती' कहलाती थी और कालांतर में खरोष्ठी नाम से प्रसिद्ध हुई। कुछ विद्वानों ने खरोष्ठी को 'खरोष्ट्री' से संबंधित किया है। 'खरोष्ट्र' की समता ईरान के प्राचीन संत जरथुस्त्र या जरदुष्ट से की है। चीनी परंपरा के अनुसार खरोष्ठी लिपि का आविष्कारक खरोष्ठ नाम ऋषि था। एक अन्य मत के अनुसार खरोष्ठी शब्द हिब्रू शब्द 'खरोशेथ' अर्थात् 'लिखावट' का संस्कृत

प्रतिरूप है। वस्तुतः खरोष्ठी लिपि के नामकरण के विषय में निश्चित रूप से कुछ कह सकना कठिन है।

मौर्यवंशी राजा अशोक के अनेक लेखों में से केवल शाहबाजगढ़ी और मान्सेरा की चट्टानों पर खुदे हुए लेख खरोष्ठी लिपि में है। इससे ज्ञात होता है कि यह लिपि ईसापूर्व तृतीय शताब्दी में केवल भारतवर्ष के उत्तरी पश्चिमी सीमांत प्रदेश के आसपास अर्थात् पंजाब (पाकिस्तान) के गान्धार प्रदेश में प्रचलित थी।

अभी तक खरोष्ठी लिपि अभिलेखों में, धातुपट्टों व बर्तनों पर, सिक्कों पर, पत्थरों पर, अफगानिस्तान के एक स्तूप से निकले भोजपत्र के छोटे से टुकड़े पर तथा खोतान से प्राप्त धम्मपद की भोजपत्र पर लिखी हुई पुस्तक पर मिली है। अशोक के पश्चात् इस लिपि का प्रचार बहुधा यूनानी, शक, क्षत्रप, पार्थियन् तथा कुषाण आदि विदेशी राजाओं के सिक्कों पर प्राकृत भाषा में मिलता है। खरोष्ठी लिपि के शिलालेख आदि ब्राह्मी लिपि की अपेक्षा बहुत कम है। वस्तुतः खरोष्ठी अल्पायु और अल्पक्षेत्रीय लिपि थी। यह लिपि अपने मूल रूप में ही समाप्त हो गई। संभवतः ब्राह्मी लिपि के साथ प्रयुक्त होने वाली यह लिपि जटिल एवं दुरूह थी। इसका साधारण प्रयोग कठिन था।

खरोष्ठी लिपि का नाम विभिन्न भारतीय (ललितविस्तर) तथा विदेशी ग्रंथों (चीनी विश्वकोष फा-वान-शू-लिन) में उल्लिखित है। खरोष्ठी नाम सातवीं शताब्दी तक चीनी ग्रंथों में प्रयुक्त होता रहा।

विद्वानों के मत में खरोष्ठी अपने समय की एक लोकप्रिय लिपि थी। विशेष रूप से लिपिक और व्यापारी इसका प्रयोग करते थे। इसके अक्षर हमेशा घसीट कर (running hand) शीघ्रता से लिखे प्राप्त होते हैं। खरोष्ठी लिपि में दीर्घ स्वर नहीं है जिसकी प्रतिदिन के प्रयोग में कोई आवश्यकता नहीं होती। इसमें अल्पप्राण व्यञ्जन द्वित्वों के स्थान पर अकेले व्यञ्जन का प्रयोग प्राप्त होता है। (क्क के स्थान पर क। अल्पप्राण और महाप्राण व्यंजनों के संयोग में केवल पश्चातवर्ती व्यंजन का प्रयोग किया जाता था (क्ख के स्थान पर ख)। ईसापूर्व तृतीय शताब्दी के मौर्यवंशी राजा अशोक के शहबाजगाढ तथा मान्सेरा के लेखों के लिए गए कुछ अक्षर इस प्रकार है-?

क - ख - न -

ग - अ - इ -

खरोष्ठी लिपि के उद्भव के विषय में विद्वानों के मतभेद है। कुछ विद्वान इसे अरमाई लिपि से विकसित मानते हैं तथा अन्य इसका उद्भव भारत में ही मानने के पक्ष में हैं।

विदेशी उद्भव का सिद्धांत– खरोष्ठी अक्षर सेमेटिक शाखा की अरमेइक अक्षरों की तरह दिखाई देते हैं तथा खरोष्ठी और अरमेइक दोनों लिपियां दाएं से बाएं लिखी जाती थी। इस आधार पर जॉर्ज ब्यूलर तथा दानी महोदय ने खरोष्ठी लिपि की विदेशी उत्पत्ति सिद्ध करने का प्रयास किया। उनका कहना है कि ईरानी आक्रमण के बाद ही खरोष्ठी लिपि का प्रयोग भारत में पाया गया। (षष्ठ शताब्दी ईसापूर्व के उत्तरार्द्ध से चतुर्थ शताब्दी ईसापूर्व)। खरोष्ठी लिपि के अभिलेखों में कुछ ईरानी शब्द भी प्राप्त होते हैं, जैसे लेखन या लेख के लिए 'दिपि' शब्द का प्रयोग। परंतु यह सभी तर्क खंडित किए जा चुके हैं। यह प्रमाणित किया जा चुका है कि ईरानी आक्रमण से पूर्व खरोष्ठी एक विकसित लिपि के रूप में यहां विद्यमान थी। खरोष्ठी में दीर्घ स्वरों के अभाव का कारण यह रहा होगा कि खरोष्ठी का आविष्कार प्राकृत भाषा को लिखने के लिए किया गया था जिसमें दीर्घ स्वर स्वतः नहीं मिलते। 'दिपि' शब्द के विषय में विद्वानों का कहना है कि संस्कृत में दिप् शब्द का प्रयोग 'चमकना' अर्थ से प्राप्त होता है। चमकते हुए अक्षरों के लिए 'दिप्' या दिपि शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है। इस प्रकार खरोष्ठी लिपि का विदेशी उत्पत्ति का सिद्धांत निराधार सिद्ध हो जाता है।

भारतीय उद्भव का सिद्धांत– विद्वानों ने खरोष्ठी लिपि को पूर्णतया भारतीय लिपि माना है। क्योंकि खरोष्ठी लिपि के प्रारंभिक अभिलेख उत्तरी पश्चिमी भारत में ही पाए गए हैं। पश्चिमी एशिया में खरोष्ठी लिपि में एक भी अभिलेख या लिखित प्रमाण नहीं मिलता। खरोष्ठी लिपि का प्रयोग सबसे पहले अशोककालीन भारत में मिला। उसके पश्चात यह मध्य एशियाई देशों में प्रयुक्त हुई। खरोष्ठी लिपि में एक बौद्ध ग्रंथ 'धम्मपद' की पांडुलिपि चीनी तुर्किस्तान से प्राप्त हुई। यदि खरोष्ठी विदेशी लिपि होती तो खरोष्ठी लिपि में लिखे गए विदेशी ग्रंथ भी प्राप्त होते। खरोष्ठी लिपि में प्राप्त होने वाले अनुस्वार व संयुक्ताक्षरों के प्रयोग से इस लिपि का भारतीय उद्भव स्पष्ट हो जाता है। चीनी विश्वकोष में भी खरोष्ठी की गणना भारतीय लिपियों में की गई है जो दाएं से बाएं लिखी जाती थी। इस लिपि का जन्मदाता खरोष्ठ नामक व्यक्ति को माना गया था जो शब्द पूर्णतया भारतीय प्रतीत होता है। उपरोक्त तर्कों से यही सिद्ध होता है कि खरोष्ठी भारतीय लिपि थी जिसका उदय, विकास व अंत भारत में ही हुआ।

ब्राह्मी लिपि

प्राचीन भारतीय अभिलेखों में सर्वाधिक प्रयुक्त लिपि ब्राह्मी है। ब्राह्मी लिपि का प्राचीनतम रूप बस्ती जिले में प्राप्त पिपरावा के स्तूप में तथा अजमेर जिले में बड़ली (बर्ली) गांव के शिलालेख में प्राप्त हुए हैं। इन शिलालेखों का समय विद्वानों ने पंचम शताब्दी ईसापूर्व माना है।

बौद्ध एवं जैन साहित्य में लिपियों की सूची में ब्राह्मी लिपि का नाम सर्वप्रथम दिया गया है। पण्णावणा-सूत्र और समवायाङ्गसूत्र नामक जैन ग्रंथों में 18 लिपियों की सूची दी गई है। भगवतीसूत्र में ब्राह्मी लिपि को नमस्कार किया गया है- **नमो बंभीये लिविये**। बौद्ध ग्रंथ ललितविस्तर में 64 लिपियों की सूची दी गई है। अल्बेरूनी ने लिखा है कि ब्रह्मा ने एक लिपि का आविष्कार किया था, जिसका नाम ब्राह्मी था। वह बाएं से दाएं लिखी जाती थी।

पुरातत्त्वविदों ने ब्राह्मी लिपि के उद्भव के विषय में भिन्न-भिन्न मत प्रस्तुत किए हैं। इन मतों को मुख्य दो विभागों में विभक्त कर स्पष्ट किया जा सकता है-

i. विदेशी उद्भव के सिद्धांत
ii. स्वदेशी (भारतीय) उद्भव के सिद्धांत

विदेशी उद्भव के सिद्धांत के अंतर्गत यूनानी (ग्रीक) उद्भव, सेमेटिक उद्भव, उत्तरी सेमेटिक उद्भव, दक्षिणी सेमेटिक उद्भव तथा फिनिशियन उद्भव का सिद्धांत विद्वानों ने प्रस्तुत किए हैं।

यूनानी (ग्रीक) उद्भव के समर्थक जेम्स प्रिंसेप और बिल्सन आदि के मतानुसार ब्राह्मी का उद्भव ग्रीक वर्णमाला से हुआ। उनका कहना है कि सिकंदर के आक्रमण के समय भारतीयों ने यूनानियों से लिखने की कला सीखी। परंतु सिकंदर के आक्रमण (325 ईसापूर्व) से बहुत पूर्व भारत में लेखनकला का प्रचार था। अतः यह मत मान्य नहीं। **समेटिक उद्भव** के समर्थक ब्यूलर हैं। उनके मतानुसार सेमेटिक लिपियों की अनेक शाखाएं हैं। ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति के लिए कौन सी शाखा की लिपि उत्तरदायी है, इस विषय में मतैक्य नहीं है। इस संदर्भ में सेमेटिक लिपियों की मुख्य तीन शाखाओं का उल्लेख किया जा सकता है-

उत्तरी सेमेटिक लिपि- से ब्राह्मी लिपि के उद्भव विषयक विचार को प्रकट करते हुए ब्यूलर का कहना है कि हिंदुओं ने उत्तरी सेमेटिक लिपि के अनुकरण पर कुछ परिवर्तन के साथ अपने अक्षरों को बनाया। इस आधार पर उत्तरी सेमेटिक तथा ब्राह्मी लिपि में साम्य स्थापित करने का प्रयत्न किया। इस सिद्धांत का समर्थन करते हुए ब्यूलर का कहना है कि भारत में सिंधुघाटी में जो प्राचीन लिपियां प्राप्त हुई है वे चित्रात्मक या भावध्वनिमूलक है। उससे वर्णात्मक या अक्षरात्मक लिपि का उद्भव संभव नहीं। अन्य विद्वानों ने इस मत को अमान्य सिद्ध किया क्योंकि प्राचीन काल में समस्त लिपियां चित्रात्मक थीं। उनसे ही वर्णात्मक लिपियों का विकास हुआ।

दक्षिणी सेमेटिक उद्भव के मत का प्रतिपादन करने वाले विद्वान डी.के. टेलर

तथा कैनन आदि हैं। डॉ० आर.एम. साहा ने ब्राह्मी लिपि को अरबी से संबंधित माना है। इस मत के खंडन में विद्वानों का कहना है कि यद्यपि भारत तथा अरब के मध्य प्राचीनकाल से व्यापारिक सम्बन्ध थे परंतु फिर भी इस सम्बन्ध का भारतीय लिपि पर कोई प्रभाव परिलक्षित नहीं होता। भारतीय तथा अरबी अक्षरों की समता पूर्णतया नगण्य है।

फिनिशियन उद्भव का सिद्धांत– उत्तरी सेमेटिक से ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति मानने वाले विद्वानों के एक वर्ग ने ब्राह्मी अक्षरों का उद्भव फिनिशयन लिपि से निर्धारित करने का कारण यह बताया है कि ब्राह्मी अक्षरों में से एक तिहाई अक्षर फिनिशियन अक्षरों के समरूप है–

फिनिशियन	ब्राह्मी
⊙ ट	⊙ थ
O आ	O ठ
⊢ स	⊢ ज
+ ट	+ क

उपरोक्त तालिका से यद्यपि फिनिशियन और ब्राह्मी अक्षरों में समानता दृष्टिगोचर तो होती है परंतु विद्वानों के मतानुसार यह मत भी मान्य नहीं हो सकता। वस्तुतः जिस समय ब्राह्मी लिपि का उद्भव हुआ उस समय भारत का सम्बन्ध फिनिशिया से नहीं था। ब्राह्मी लिपि के उद्भव के समय तक फिनिशिया में किसी भी लिपि का विकास नहीं हुआ था। अपि च फिनिशियन भारत के ही आदिवासी माने जाते थे, जिन्हें ऋग्वेद में पण्णी कहां है।

स्वदेशी (भारतीय) उद्भव का सिद्धांत

द्रविड़ उत्पत्ति के सिद्धांत के समर्थक एडवर्ड थॉमस आदि विद्वानों ने ब्राह्मी लिपि को द्रविड़ों द्वारा निर्मित लिपि बताया है जो कि मान्य नहीं हो सकता। इस मत के खंडन में विद्वानों ने यह तर्क दिया है कि ब्राह्मी लिपि के प्राचीनतम अभिलेख उत्तर भारत में ही प्राप्त हुए हैं जबकि द्रविड़ मुख्यतः दक्षिण भारत तक ही सीमित थे। अपि च विशुद्ध द्रविड़ भाषा तमिल में वर्ग के केवल प्रथम व पंचम वर्ण ही पाए जाते हैं। अतः ध्वनिशास्त्रीय दृष्टि से कम समृद्ध द्रविड़ भाषा किसी भी प्रकार ब्राह्मी लिपि की उत्पत्ति का कारण नहीं हो सकती।

आर्य उत्पत्ति सिद्धांत के समर्थक एडवर्ड थॉमस, दायसन, कनिंघम, लासन

आदि विद्वानों का मत है कि आर्यों ने ही भारत की किसी पुरानी चित्रलिपि के आधार पर ब्राह्मी लिपि को विकसित किया। परन्तु ब्यूलर ने इस सिद्धांत का विरोध करते हुए कहा कि जब भारत में कोई चित्रलिपि मिलती ही नहीं तो चित्रलिपि से ब्राह्मी के विकसित होने की कल्पना निराधार है। परन्तु 1921–1922 ईस्वी में सिंधु घाटी की लिपि के प्रकाश में आ जाने से इस विरोध का निराकरण हो गया।

एरण में तांबे के सिक्के पर प्राप्त हुए दाएं से बाएं लिखे गए लेख को ब्यूलर ने ब्राह्मी के सेमेटिक उद्‌भव का कारण माना है। इस मत को भी विद्वानों द्वारा अमान्य सिद्ध कर दिया गया। वस्तुत यह लेख किन्ही विशेष परिस्थितियों में ही इस प्रकार लिखा गया था। ब्राह्मी लिपि आरम्भ से ही बाएं से दाएं लिखी जाती रही है।

विभिन्न तर्कों के आधार पर यही सिद्ध किया गया कि ब्राह्मी लिपि का उद्भव भारतीय है। इस लिपि की कुछ विशेषताएं है जो विश्व की किसी भी अन्य लिपि से मेल नहीं खाती–

- ब्राह्मी लिपि के अक्षर उच्चारण के आधार पर लिखे जाते हैं तथा ब्राह्मी एक स्वतंत्र लिपि है।
- ब्राह्मी लिपि में दीर्घ व ह्रस्व मात्राओं का प्रयोग मिलता है।
- अनुस्वार, अनुनासिक तथा विसर्ग का प्रयोग ब्राह्मी लिपि में प्राप्त होता है।
- अक्षरों का ध्वनि सम्बन्धी विभाजन उच्चारण के आधार पर हुआ है।

इन्हीं गुणों के आधार पर यह एक विशिष्ट लिपि है जिसके उच्चारण तथा व्याकरण का अपना एक विशिष्ट स्थान है। अतः विद्वानों ने ब्राह्मी लिपि का उद्भव विशुद्ध भारतीय माना है। संभवतः विस्तृत वैदिक साहित्य की रक्षा के प्रयोजन से ही आर्यों ने इस लिपि का विकास किया होगा।

अशोक कालीन ब्राह्मी लिपि तथा गुप्तकालीन ब्राह्मी लिपि को तालिका द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

देवनागरी	अशोककालीन ब्राह्मी	गुप्तकालीन ब्राह्मी
इ	𑀇	𑀇
क	𑀓	𑀓
घ	𑀖	𑀖
छ	𑀙	𑀙

देवनागरी	अशोककालीन ब्राह्मी	गुप्तकालीन ब्राह्मी
ट	𑀝	𑀝
ठ	𑀞	𑀞
थ	𑀣	𑀣 𑀣
न	𑀦	𑀦
ब	𑀩	𑀩

ब्राह्मी लिपि की मुख्यतया दो शैलियां भारत में विकसित हुई। एक दक्षिणी ब्राह्मी, जिससे तमिल आदि द्रविड़ भाषाओं की लिपि विकसित हुई। दूसरी उत्तरी ब्राह्मी जिससे आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं की लिपियों का विकास हुआ।

• • •

वर्ग 'स'

चयनित अभिलेखों का अध्ययन
(Study of Selected Inscriptions)

प्रथम अन्विति

अशोक के गिरनार व सारनाथ अभिलेख

अशोक का प्रथम गिरनार शिला अभिलेख
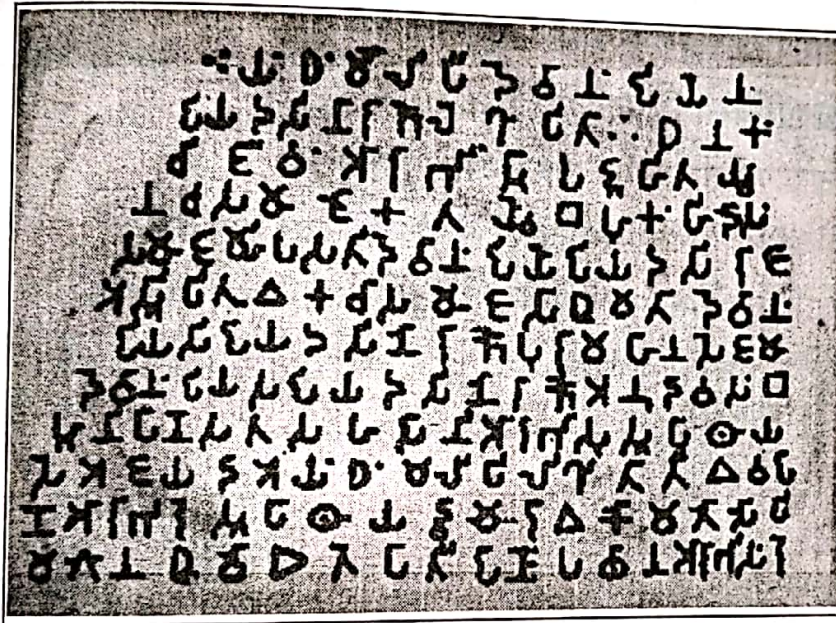
1. इयं धमलिपी देवानंप्रियेन
2. प्रियदसिना राञा लेखापिता इध न किं
3. चि जीवं आरभित्पा प्रजूहितव्यं
4. न च समाजो कतव्यो बहुकं हि दोसं
5. समाजम्हि पसति देवानंप्रियो प्रियदसि राजा
6. अस्ति पि तु एकचा समाजा साधुमता देवानं
7. प्रियस प्रियदसिनो राञो महानसम्हि
8. देवानंप्रियस प्रियदसिनो राञो अनुदिवसं ब
9. हूनि प्राणसतसहस्रानि आरभिसु सूपाथाय
10. स अज यदा अयं धमलिपी लिखिता ती व प्रा

11. णा आरभरे सूपाथाय द्वो मोरा एको मगो सो पि
12. मगो न ध्रुवो एते पि प्राणा पछा न आरभिसरे

संस्कृत-छाया

1. इयं धर्मलिपिः देवानांप्रियेण
2. प्रियदर्शिना राज्ञा लेखिता। इह न क-
3. श्चित् जीवः आलभ्य प्रहोतव्यः।
4. न च समाजः कर्तव्यः। बहुकं हि दोषं
5. समाजे पश्यति देवानांप्रियः प्रियदर्शी राजा।
6. सन्ति अपि तु एके समाजाः साधुमताः देवानां
7. प्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञः। पुरा महानसे
8. देवानांप्रियस्य प्रियदर्शिनः राज्ञो अनुदिवसं ब-
9. हूनि प्राणशतसस्त्राणि आलभ्यन्त सूपार्थाय।
10. तत् अद्य यदा इयं धर्मलिपिः लिखिता, त्रयः एव प्रा-
11. णाः आलभ्यन्ते सूपार्थाय- द्वौ मयूरौ, एकः मृगः, सोऽपि
12. मृगः न ध्रुवः। एते अपि त्रयः प्राणाः पश्चात् न आलप्स्यन्ते।

गुजरात के जूनागढ़ नगर से लगभग दो किलोमीटर पूर्व की ओर गिरनार नामक पहाड़ी की एक शिला के पूर्वोत्तरी भाग पर अशोक के चौदह अभिलेख उत्कीर्ण हैं। इन अभिलेखों को पृथक सूचित करने के लिए बीच में रेखाएं दी गई हैं। अशोक के अभिलेखों को सर्वप्रथम पढ़ने का श्रेय जेम्स प्रिंसेप को जाता है।

अशोक के प्रथम गिरनार शिलाभिलेख में यज्ञ में पशुबलि का निषेध किया गया है। वैदिक बलि व्यवस्था का यह अभिलेख स्पष्ट विरोध व्यक्त करता है। अनैतिक तथा हिंसापरक समाजों पर प्रतिबंध लगाया गया है। अशोक ने अपने रसोईघर में तथा प्रजा में मांस पकाने की कटौती की आज्ञा दी है। भविष्य में भोजन के लिए कोई भी जीव ना मारने का संकल्प लिया गया है। बारह पक्तियों का यह शिलालेख प्राकृत भाषा तथा ब्राह्मी लिपि में उत्कीर्ण किया गया है।

विद्वानों ने अशोक का समय लगभग 272-232 ईसा पूर्व निर्धारित किया है।

अनुवाद

1-2 यह धम्म लिपि देवानंप्रिय प्रियदर्शी राजा (अशोक) द्वारा लिखवाई गई है। यहां कोई भी

3- जीव बलि के लिए नहीं मारा जाना चाहिए।

4- समाज का आयोजन नहीं करना चाहिए। बहुत से दोष

5- समाज में देवानंप्रिय प्रियदर्शी राजा देखता है।

6-7 फिर भी कुछेक समाजों को देवानंप्रिय प्रियदर्शी राजा उचित मानता है। पहले भोजनालय में

8-9 देवानंप्रिय प्रियदर्शी के प्रत्येक दिन सहस्त्रों जानवर (प्राणी) सूप के लिए मारे जाते थे।

10-11 पर आज से जब यह धर्मलिपि लिखी गई है (तब से) तीन ही प्राणी-दो मोर और एक मृग व्यंजन के लिए मारे जाते हैं।

12- इनमें से मृग का मारना भी निश्चित नहीं। (कुछ समय) पश्चात् ये तीन प्राणी भी नहीं मारे जाएंगे।

टिप्पणियां

धम्मलिपि- कलिंग युद्ध के भीषण हत्याकांड ने अशोक को उद्वेलित कर दिया। परिणामस्वरुप अशोक ने हिंसा का पूर्णतया परित्याग कर धर्ममार्ग को अपना लिया। इसी कारण अशोक के अधिकांश अभिलेखों में धम्म सम्बन्धी व्याख्या प्रमुख है। धम्म संस्कृत के धर्म शब्द का प्राकृत रूप है। धम्मलिपि अथवा धर्मलिपि से तात्पर्य ऐसी राजाज्ञा से है जो प्रजाजनों का नैतिक व धार्मिक दृष्टि से उद्‌बोधन करती है। यह धम्मलिपि प्रजाजनों को कर्तव्य-अकर्तव्य का बोध कराने के उद्देश्य से लिखवाई जाती थीं। यथा प्रथम शिला अभिलेख में पशुहिंसा का निषेध किया है। अपि च सभी धार्मिक संप्रदायों में परस्पर सहनशीलता, संयम तथा भावशुद्धि रखने का उपदेश, धर्माचरण द्वारा इहलोक और परलोक का कल्याण, धर्मदान, धर्ममित्रता, धर्मसम्बन्ध की श्रेष्ठता पर बल इत्यादि विषयों का उल्लेख अशोक ने धम्मलिपि में किया है।

समाज- 'समाज' से अभिप्राय लोगों का निष्प्रयोजन एकत्रित होने से है। जो समाज या जनसमुदाय प्रजा के हित में संगठित होते थे उन्हीं समाजों को अशोक श्रेष्ठ मानते हैं। अन्यथा अनैतिक, अधार्मिक समाज के आयोजन का निषेध किया गया है। अशोक इस प्रकार के संगठन या समाज को दोषयुक्त मानते हैं।

अभिलेख में प्रयुक्त **मृग** (मग) शब्द का अर्थ किसी भी चौपाए पशु से लिया जा सकता है। मात्र हिरण के लिए इसका प्रयोग नहीं किया गया। इसी प्रकार **मयूर** से अभिप्राय पक्षी समुदाय से है केवल मयूर नामक पक्षी अभिप्रेत नहीं है।

देवानप्रियेन प्रियदासिना राञा- (देवानां प्रियेण प्रियदर्शिना राज्ञा) देवानंप्रिय

का अर्थ देवताओं का प्यारा है। मौर्य सम्राट् अशोक की सम्मान सूचक उपाधि है। प्रियदर्शी भी अशोक का सम्मानसूचक नाम है। **मास्की व गुर्जरा** के अभिलेखों में अशोक का नाम इस उपाधि तथा सम्मानसूचक नाम के साथ प्राप्त होता है–**'देवानांपियस्य पियदसिनो असोकराजस'**। (गुर्जरा लघुशिला अभिलेख) (**देवानांप्रियस्य प्रियदर्शिन: अशोकराजस्य**) **'देवानं पियस असोकस (देवानां प्रियस्य अशोकस्य)** (मास्की शिला अभिलेख) मगध का राजा मौर्यवंशी अशोक चन्द्रगुप्त का पौत्र तथा बिन्दुसार का पुत्र था। कलिंग युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् मानव धर्म के वास्तविक रूप को अपने अभिलेखों के माध्यम से भारत की जनता तथा भारत से बाहर के देशों के सम्मुख रखा।

अशोक का सारनाथ लघु स्तम्भ अभिलेख

सारनाथ, काशी अथवा वाराणसी के 10 किलोमीटर पूर्वोत्तर में स्थित प्रमुख बौद्ध तीर्थ स्थल है। ज्ञान प्राप्ति के पश्चात् भगवान बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश यहीं दिया था जिसे 'धर्म चक्र परिवर्तन' का नाम दिया जाता है (लगभग 533 ईसा पूर्व) सारनाथ में अशोक का चतुर्मुख सिंह स्तम्भ विद्यमान है। भारत का राष्ट्रीय चिन्ह इसी अशोक स्तम्भ के मुकुट की द्विविमीय अनुकृति है।

अशोककालीन प्रस्तर स्तम्भ का ऊपरी सिरा सारनाथ संग्रहालय में रखा गया है। इस स्तम्भ पर तीन लेख उत्कीर्ण किए गए हैं। ग्यारह पंक्तियों के प्रस्तुत अभिलेख की लिपि अशोककालीन ब्राह्मी तथा भाषा प्राकृत है, जिसमें सम्राट् ने आदेश दिया है कि जो भिक्षु या भिक्षुणी संघ में फूट डालेंगे और संघ की निंदा करेंगे उन्हें श्वेत वस्त्र पहनाकर संघ से निष्कासित कर दिया जाएगा। (दूसरा लेख कुषाण काल का तथा तीसरा लेख गुप्त काल का है।) विद्वानों ने अशोक के सारनाथ लघु स्तम्भ अभिलेख को उत्कीर्ण करने का समय, लगभग 250 ईसा पूर्व निर्धारित किया है।
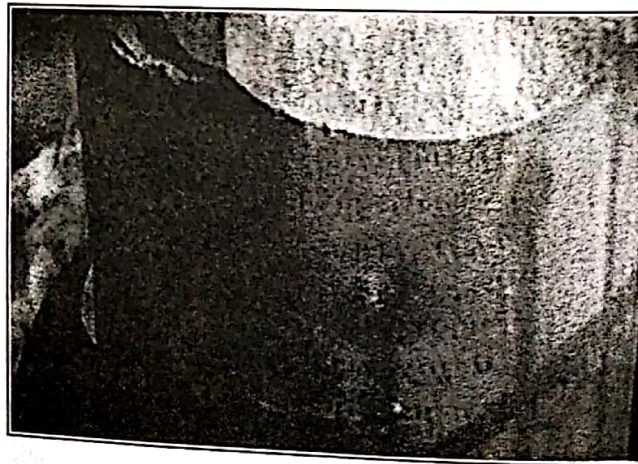
सारनाथ के स्तम्भ पर ब्राह्मी लिपि में शिलालेख

1. देवा (नंपिये)
2. ए ळ
3. पाट (लि पु त) (न स कि) ये केन पि संघे भेतवे (।) ए चुं खो
4. भिखू वा भिखुनि वा सघं भाखति से ओदातानि दुसानि सनंधापयि या आनावाससि
5. आवासयियेे (।) हेवं इय सासने भिखु-संघसि च भिखुनि-संघसि च विनपयितवियेे (।)
6. हेवं देवानंपिये आहा (।) हेदिसा च इका लिपी तुफाकंतिकं हुवा ति संल्लनसि निखिता (।)
7. इंक च लिपिं हेदिसमेव उपासकानंतिकं निखिपाथ (।) ते पि च उपासका अनु-पोसथं यावु
8. एतमेव सासनं विस्वसयितवे (।) अनु-पोसथं च धुवाये इकिके महामाते पोसथाये
9. याति एतमेव सासनं विस्वसयितवे आजानितवे च (।) आवते च तुफाकं आहाले
10. सवत विवासयाथ तुफे एतेन वियंजनेन (।) हेमेव सवेसु कोट-विषवेसु एतेन
11. वियंजनेन विवासापायाथा (।।)

संस्कृत - छाया

1. देवानं प्रियः ....
2. ये ....
3. पाट (लिपुत्रे तथा कर्त्तव्यं येन न शक्यः) केन अपि संघो भेतुम् (-भक्तव्यः)। यः च खलु
4. भिक्षु वा भिक्षुणी वा संघं भङ्क्ष्यति सः अवदातानि दूष्यानि सन्निधाप्य अनावासे (-अन्यावासे)
5. आवास्यः (-आवासयितव्यः)। एवं इदं शासनं भिक्षुसंघे च भिक्षुणीसंघे च विज्ञापयितव्यम्।
6. एवं देवानांप्रियः आह। - ईदृशी च एका लिपिः युष्माकम् अन्तिके भूयात् इति संसरणे (आवासेयद्वा पथि) निक्षिप्ता।
7. एकां च लिपिम् ईदृशीम् एव उपासकानाम् अन्तिके निक्षिप्त। ते अपि च उपासकाः अनुपवसथं (-उपवासदिनेषु) (शासनन्तिकं) यायुः

8. एतत् एव शासनम् (-एतस्मिन् एव शासने) (आत्मनः) विश्वासयितुम्। अनुपवसथं च ध्रुवायाः (-धवत्वेन) एकैकः (-प्रत्येकं) महामात्रः उपवसथाय
9. याति। एतत् एव शासनं (आत्मानं) विश्वासयितुं आज्ञातुं (-ज्ञातुं बोद्धुं) च। यावत्कं (स्थानं व्याप्य) च युष्माकम् आहारः (-प्रदेशः)
10. सर्वत्र विवासयत यूयं (राजपुरुषान्) एतेन व्यञ्जनेन। (-अनुशासनानुसारेण) एवमेव सर्वेषु कोट्टविषयेषु (-दुर्गरक्षितप्रदेशेषु) एतेन
11. व्यञ्जनेन विवासयेत।

हिंदी अनुवाद

1. देवताओं के प्रिय (प्रियदर्शी राजा आज्ञा देते हैं)
2. जो ....
3. पाटलिपुत्र में किसी के द्वारा संघ भेद नहीं किया जाना चाहिए। जो भी कोई
4. भिक्षु या भिक्षुणी संघ में भेद उत्पन्न करेगा उसे श्वेतवस्त्र धारण कराकर एकांत स्थान में
5. रखा जाएगा। यह आज्ञा भिक्षुसंघ तथा भिक्षुणीसंघ को बता देनी चाहिए।
6. इस प्रकार देवताओं के प्रिय ने कहा। इस प्रकार की एक लिपि (लेख) आप लोगों के समीप एकत्रित होने के स्थान पर होनी चाहिए।
7. इसी प्रकार का एक लेख उपासकों के पास रखें। और वे उपासक भी प्रत्येक उपवास के दिन आए।
8. इस शासन में विश्वास करें। उपवास के दिन निश्चय ही प्रत्येक महामात्र उपवास के लिए
9. जाता है। इस आज्ञापत्र में विश्वास करने और इसे अच्छी तरह जानने के लिए और जितना आप लोगों का आहार-क्षेत्र (कार्यक्षेत्र) है
10. सर्वत्र आप (राज्यपुरुषों को) भेजिए इस शासन का अक्षरानुसार पालन करने के लिए। इसी प्रकार सभी कोट्टविषयों में (दुर्गरक्षित प्रदेशों में) इस शासन (आज्ञापत्र, आदेश) के साथ
11. अक्षरानुसार अधिकारियों को भेजिए।

महामात्र– अशोक ने अपने प्रतिनिधि के रूप में नए अधिकारियों में महामात्रों की नियुक्ति की थी। महामात्रों का कार्य धार्मिक संप्रदायों की अभिवृद्धि व संरक्षण था। इसके अतिरिक्त अन्य प्रशासनिक कार्यों में भी महामात्र नियुक्त किए जाते थे। सारनाथ के स्तम्भ अभिलेख में महामात्र अशोक के आदेश को प्रजा तक पहुंचाते हैं।

• • •

द्वितीय अन्विति

रुद्रदामन् का गिरनार अभिलेख

अहमदाबाद से लगभग 327 किलोमीटर दूर स्थित जूनागढ़ पहाड़ियां गिरनार नाम से जानी जाती हैं। पहाड़ी की तलहटी में एक विशाल चट्टान पर अशोक (लगभग 272-232 ईसा पूर्व) के मुख्य चौदह धर्म लेख उत्कीर्ण है। इसी चट्टान रुद्रदामन का (शक संवत् 150 ईस्वी) अभिलेख उत्कीर्ण है। गुप्त सम्राट स्कन्दगुप्त (लगभग 458 ईस्वी) का अभिलेख भी इसी चट्टान पर उत्कीर्ण है। रुद्रदामन् का जूनागढ़ अभिलेख छोटी-बड़ी 20 पंक्तियों में पूर्ण हुआ है। भाषा संस्कृत तथा लिपि ब्राह्मी है। इस अभिलेख में छः वाक्य हैं। इस अभिलेख में भयंकर बाढ़ व तूफान के कारण सुदर्शन तालाब के बांध के टूटने की घटना को महाक्षत्रप रूद्रदामा के 72वें वर्ष में मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा को घटित बताया गया है। विद्वानों ने यह वर्ष शकसंवत् निर्धारित किया है। तदनुसार इस घटना का समय नवंबर 150 ईस्वी हुआ।

सर्वप्रथम सुदर्शन नामक तालाब चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रांतीय शासक पुष्यगुप्त के द्वारा बनवाया गया था (लगभग 321-298 ईसा पूर्व)। सम्राट् अशोक के प्रतिनिधि शासक तुषास्फ ने (लगभग 272-232 ईसा पूर्व) इसे प्रणालियों आदि की व्यवस्था से संपन्न किया। शक-संवत् के 72 वें वर्ष (150 ई०) में मार्गशीर्ष मास की कृष्णा प्रतिपदा को अत्यधिक वर्षा के कारण उर्जयत् पर्वत् से निकलने वाली सुवर्णसिकता, पलाशिनी आदि नदियों में भयंकर बाढ़ आ जाने के कारण तालाब के बांध में गहरी दरार पड़ गई। महाक्षत्रप रुद्रदामन् के अमात्य सुविशाख द्वारा सुदर्शन झील के बांध का पुनर्निमाण करवाया गया।

रुद्रदामन का गिरनार शिलाभिलेख का एक भाग

1. सिद्धं (।।*) इदं तडाकं सुदर्शनं गिरिनगरादपि सम(न्तात्)। ..... (मृत्ति) कोपल-विस्तारायामोच्छ्र्य-निःसन्धि-बद्ध-दृढ़-सर्व्व-पालीकत्वात्पव्वर्त-पा-
2. द-प्र्प्रतिस्पर्द्धि-सुश्लि)ष्ट)- (बन्धं) * .... मवजातेनाकृत्रिमेण सेतु-बन्धेनोपन्नं सुप्र्रति-विहित-प्र्रणाली-परीवाह-
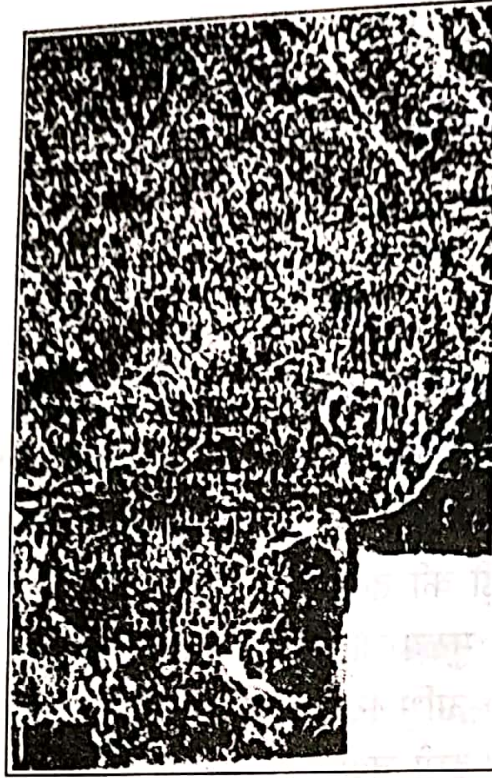
3. मीढ–विधानं च त्रि–स्क(न्ध)...... नादिभिरनुग्रहैर्महत्युपचये वर्त्तते) ।* । तदिदं राज्ञो महाक्षत्रपस्य सुगृही–
4. त–नाम्नः स्वामि–चष्टनस्यः पौत्र(स्य राज्ञः महाक्षत्रपस्य सुगृहीतनाम्नः स्वामिजयदाम्न)ः पुत्रस्य राज्ञो महाक्षत्रपस्य गुरुभिरभ्यस्तनाम्नो रुद्रादाम्नो वर्षे द्वि–सप्ततितमे ७० २
5. मार्ग्गशीर्ष–बहुल–प्र '(तिपदि)..... (निः) सृष्टवृष्टिना पर्ज्जन्येन एकार्णवभूतायामिव पृथिव्यां कृतायां गिरेरूर्जयतः सुवर्णसिकता
6. पलाशिनी–प्रभृतीनां नदीनां अति सेतुम....... (य) माणानुरूप–प्रतिकारमपि गिरि–शिखर–तरु–तटाट्टलकोपतल्प–द्वार–शरणोच्छ्रय–विध्वंसिना युग–निधन–सदृ–
7. श–परम–घोर–वेगेन वायुना प्रमथित–सलिल–विक्षिप्त–जर्ज्जरीकृताव(दीर्ण). ... क्षिप्ताश्म–वृक्ष–गुल्म–लता–प्रतान ग्रानदी तलादित्युद्घाटितमासीत्(।*) चत्वारि हस्तशतानि वीशदुत्तराण्यायतेन एतावन्त्येव विस्तीर्णेन
8. पंच–सप्तति–हस्तानवगाढेन भेदेन निस्सृत–सर्व्व–तोयं मरु–धन्वकल्पमतिभृशं दु(र्दर्शनमासीत्) (।*)....... (स्या)र्थे मौर्यस्य राज्ञः चन्द्रगुप्तस्य राष्ट्रियेण (वै)श्येन पुष्यगुप्तेन कारितं ग्रशोकस्य मौर्यस्य(कृ*)तेयवन–राजेन तुषास्फेनाधिष्ठाय

9. प्रणालीभिरल(ं) कृत (ं) (।*) तत्कारितया च राजानुरूप-कृत-विधानया तस्मिं (मेदे) दृष्टया प्रनाड्या (वि(स्तृ)त-से (तु)णा ग्रा गर्भात्प्रभृत्यविहत-समुदि(त)-राज-लक्ष्मी-धारणा-गुणतस्सर्व्व-वर्णैरभिगम्य रक्षणार्थ पतित्वे वृतने (आ)प्राणोच्छ्वासात्पुरुषवध-निवृत्ति-कृत-

10. सत्य-प्रतिज्ञेन अन्य (त्र) संग्रामेष्वभिमुखागत-सदृश- शत्रु-प्रहरण-वितरणत्वाविगुण-रिपु....... (धृ)त-करुण्येन स्वयमभिगतजनपद-प्रणिपतितायुष-शरणदेन दस्यु-व्याल-मृग- रोगादिभिरनुपसृष्ट-पूर्व्व-नगर-निगम-

11. जनपदानां स्व-वीर्य्यार्जितानामनुरक्त-सर्व्व-प्रकृतीनां पूर्व्वापराकरवन्त्यनूप-नीवृदानर्त्त-सुराष्ट्र-श्वभ्र-मरु-कच्छ-सिन्धु सौवीर-कुकुरापरांत-निषदादीनां समग्राणां तत्प्रभावाद्य (थावत्प्राप्तधर्मार्त्थं)-काम-विषयाणां पतिना सर्व्व-क्षत्राविष्कृत-

12. वीर-शब्द-जा(तो)त्सेकाविधेयानां यौधेयानां प्रसह्योत्सादकेन दक्षिणापथ-पतेस्सातकर्णेर्द्विरपि निर्व्याजमवजित्यावजित्यसम्बन्धाविदूरतया अनुत्सादनात्प्राप्त-यशसा वा ...... (प्रा) प्तविजयेन भ्रष्ट-राज-प्रतिष्ठापकेन यथार्त्थ-हस्तो-

13. च्छ्र्यार्जितोर्जित-धर्मानुरागेण शब्दार्त्थ-गान्धर्व्व-न्यायाद्यानां विद्यानां महतीनां पारण-धारण-विज्ञान-प्रयोगावाप्त-विपुल-कीर्त्तिना तुरग-गज-रथचर्य्यासि-चर्म-नियुद्धाद्या-ति-पर-बल-लाघव-सौष्ठव-क्रियेण अहरहद्दीन-मानान-

14. वमान-शीलेन स्थूल-लक्षेण यथावत्प्राप्तैर्बलिशुल्क-भागैः कनक-रजत-वज्र-वैडूर्य-रत्नोपचय-विष्यन्दमानकोशेन स्फुट-लघु-मधुर-चित्र-कान्त-शब्द-समयोदारालंकृत-गद्य-पद्य (काव्य-विधान-प्रवीणे) न प्रमाण-मानोन्मान-स्वर-गति-वर्ण्ण-सार-सत्वादिभिः

15. परम-लक्षण-व्यंजनैरुपेत-कान्त-मूर्त्तिना स्वयमधिगत-महाक्षत्रपनाम्ना नरेंद्र-कन्या-स्वयंवरानेक-माल्य-प्राप्त-दाम्ना महाक्षत्रपेण रुद्रदाम्ना वर्ष -सहस्राय गो-ब्रा(ह्मण)....... (हितार्त्थं) धर्म्म-कीर्त्ति-वृद्ध्यर्थं च अपीडयित्वा कर-विष्टि-

16. प्रणय-क्रियाभिः पौर-जानपदं जनं स्वस्मात्कोशान् महता धनौधेन अनतिमहता च कालेन त्रिगुण-दृढतर-विस्तारायामं सेतुं (विधा(य स) र्व्व-त (टे) ..... (सु) दर्शनतरं कारितमिति(।*) (अ)स्मिन्नर्थे.....

17. (च)महाक्षत्रपस्य मतिसचिव-कर्मसचिवैरमात्य-गुण-समुद्युक्तैरप्यतिमहत्वाद् भेदस्यानुत्साह-विमुख-मतिभिः प्रत्याख्यातारंभं
18. पुनः सेतु-बन्ध-नैराश्याद् हाहाभूतासु प्रजासु इहाधिष्ठाने पौरजानपद-जनानुग्रहार्थं पार्थिवेन कृत्स्नानामानर्त्त-सुराष्ट्रानां पालनार्थन्नियुक्तेन
19. पह्लवेन कुलैप-पुत्रेणामात्येन सुविशाखेन यथावदर्थ- धर्मव्यवहार-दर्शनैरनुरागमभिवर्द्धयता शक्तेन दान्तेनाचपलेनाविस्मितेनार्य्येणाहार्य्येण
20. स्वधितिष्ठता धर्म-कीर्ति-यशांसि भर्तुरभिवर्द्धयतानुष्ठतमिति।

अनुवाद

सिद्धम् .... उपचये वर्त्तते।

सिद्धम्। इदं तडाकं सुदर्शनं गिरिनगरात् अविदूरं मृत्तिका-उपल-विस्तार-आयाम-उच्छ्रय-निःसन्धिबद्ध-दृढ़-सर्व-पालीकत्वात् पर्वत-पाद-प्रतिस्पर्धि सुश्लिष्ट-बन्धं अभिजातेन अकृत्रिमेन सेतुबन्धेन उपन्नं-सुप्रतिविहित- प्रणाली-परीवाह-मीढ-विधानं च त्रिस्कन्ध- (न) आदिभिः अनुग्रहैः महति-उपचये वर्त्तते।

सिद्धि हो।

अनुवाद– सुदर्शन नामक यह तालाब (गिरनार) गिरीनगर के निकट मिट्टी और पत्थरों की चौड़ी, लंबी और ऊंची, बिना जोड़ के बंधी हुई, सभी दृढ़ पंक्तियों वाला होने के कारण, पर्वत के चरणों की प्रतिस्पर्धा करने वाला, सुश्लिष्ट बांध वाला, उत्तम और अकृत्रिम सेतुबंध से युक्त, समुचित रूप से बनी नालियों, जल निकास एवं मलबे के निकास के प्रावधान वाला, तीन भागों में (विभाजित) बचाव प्रबन्धों के कारण (यह सुदर्शन तालाब) उत्तम दशा में है।

तदिदं .... आसीत्

तद् इदं राज्ञः महाक्षत्रपस्य सुगृहीनाम्नः स्वामिचष्टनपौत्रस्य राज्ञः क्षत्रपस्य जयदाम्नः पुत्रस्य राज्ञः महाक्षत्रपस्य गुरुभिः अभ्यस्तनाम्नः रुद्रदाम्नः वर्षे द्विसप्ततितमे 70 2 मार्गशीर्षबहुल-प्रतिपदायां .... सृष्टवृष्टिना पर्जन्येन एकार्णव-भूतायाम् इव पृथिव्यां कृतायां गिरेः ऊर्जयतः सुवर्ण-सिकता-पलाशिनी-पृभृतीनां नदीनाम् अतिमात्रोद्वृत्तैः वेगैः सेतुं क्रियमाण-अनुरूप-प्रतिकारम् अपि गिरिशिखर-तरु-तट-अट्टालक-उपतल्प-शरणोच्छ्रय-विध्वंसिना युग-निधन-सदृश-परम-घोर-वेगेन वायुना प्रमथित-सलिल-विक्षिप्त-जर्ज्जरीकृत-अवयवं...... क्षिप्त-अश्म-वृक्ष-गुल्मलताप्रतानं आ नदीतलात् इति उद्घाटितम् आसीत्।

अनुवाद– वह यह (तडाग) राजा महाक्षत्रप प्रातः स्मरणीय नाम वाले स्वामी चष्टन के पौत्र, राजा क्षत्रप जयदामा के पुत्र, राजा महाक्षत्रप, गुरुजनों द्वारा बहुचर्चित नामवाले रुद्रदामा के 72 वें (बहत्तरवें) वर्ष में, मार्गशीर्ष मास की कृष्णप्रतिपदा को (घनघोर) वर्षा को छोड़ने वाले मेघ के द्वारा पृथ्वी को मानों एक समुद्र बना दिए जाने पर, ऊर्जयत् पर्वत से (निकलने वाली) सुवर्णसिकता और पलाशिनी आदि नदियों के बहुत अधिक बड़े हुए (जल के) वेगों से बांध को, अनुरूप प्रतिकार किए जाने पर भी, प्रलय सदृश परम घोर वेग वाले वायु के द्वारा आलोडित जल से उखाड़े तथा जर्जर किए कलेवर वाला, बिखरे हुए पत्थरों, वृक्षों, झाड़ियों और लताप्रतानों वाला नदी के तलभाग तक उखाड़ दिया गया था।

चत्वारि .... आसीत्।

चत्वारि हस्तशतानि वीशत् (विंशत्) उत्तराणि आयतनेन एतावन्ति एवं विस्तीर्णेन पञ्चसप्तति-हस्त-अनवगाढेन भेदेन निःसृतसर्वतोयं मरुधन्वकल्पम् अतिभृशं दुर्दर्शनम् आसीत्।

अनुवाद– बीस ऊपर चार सौ हाथ लंबे, इतने ही (हाथ) चौड़े 75 हाथ गहरे कटाव के कारण निकले हुए सारे जल वाला (यह सुदर्शन तालाब) मरुस्थल के समान अत्यंत दुर्दर्शन हो गया।

(तदिदं जनपद) स्यार्थे .... कारितमासीत्

(तद् इदं जनपद) स्य अर्थे मौर्यस्य राज्ञः चन्द्रगुप्तस्य राष्ट्रियेण वैश्येन पुष्यगुप्तेन कारितम् अशोकस्य मौर्यस्य कृते यवनराजेन तुषास्फेन अधिष्ठाय प्रणालिभिः अलङ्कृतं। तत् कारितया च राजा-अनुरूप-कृतविधानया तस्मिन् भेदे दृष्ट्या प्रणाड्या विस्तृतसेतु .....

णा आ गर्भात् प्रभृति अविहत-समुदित-राज-लक्ष्मी-धारणा-गुणतः सर्ववर्णैः अभिगम्य रक्षणार्थं पतित्वे वृतेन आप्राणोच्छ्वासात् पुरुष-वध-निवृत्ति-कृतप्रतिज्ञेन अन्यत्र संग्रोमेषु अभिमुखागत-सदृश-शत्रु-प्रहरण-वितरणत्वाविगुण-रिपु-धृत-कारूण्येन स्वयम् अभिगत-जनपद- प्रणिपतितायुष-शरणदेन दस्यु-व्याल-मृग-रोगादिभिः अनुपसृष्ट-पूर्व-नगर-निगम-जनपदानां स्व-वीर्यार्जितानाम्-अनुरक्त-सर्व-प्रकृतीनां पूर्वापराकरावन्त्यनूप-नीवृत्-आनर्त्त- सुराष्ट्र-श्वभ्र-मरु-कच्छ-सिन्धु-सौवीर-कुकुरापरान्त- निषादादीनां समग्राणां तत् प्रभावात् यथावत् प्राप्तधर्मार्थकामविषयाणां पतिना (पत्या) सर्व-क्षत्राविष्कृत-वीर-शब्द-जातोत्सेकाविधेयानां यौधेयानां प्रसृह्य उत्सादकेन दक्षिणपथपतेः सातकर्णेः

द्विः अपि निर्व्याजम् अवजित्य अवजित्य सम्बन्ध-अविदूरतया अनुत्सादनात् प्राप्तयशसा वा ..... (प्रा) प्त-विजयेन भ्रष्ट-राज-प्रतिष्ठापकेन यथार्थ-हस्तोच्छ्रयार्जितोर्जित-धर्मानुरागेण शब्दार्थ-गान्धर्व-न्यायाद्यानां विद्यानां महतीनां पारण-धारण-विज्ञान-प्रयोगावाप्तविपुल-कीर्त्तिना तुरग-राज-रथचर्यासि-चर्म-नियुद्धाद्याः .... ति-पर-बल-लाघव-सौष्ठव-क्रियेण अहः अहः -दान-मानानवमान - शीलेन स्थूल - लक्षेण यथावत् प्राप्तैः बलिशुल्क-भागैः कनक-रजत-वज्र-वैडूर्य-रत्नोपचय-विष्यन्दमान-कोशेन स्फुट-लघु-मधुर-चित्र-कान्त-शब्द-समयोदार-अलंकृत-गद्य-पद्य (काव्य-विधान-प्रवीणे) न प्रमाण-मानोन्मान-स्वर-गति-वर्ण-सार-सत्वादिभिः परम-लक्षण-व्यंजनैः उपेत-कान्त-मूर्त्तिना स्वयम् अधिगत-महाक्षत्रप-नाम्ना-नरेन्द्र-कन्या- स्वयंवर-अनेक- माल्य-प्राप्त-दाम्ना महाक्षत्रपेण रूद्रदाम्ना वर्षसहस्त्राय गो-ब्रा(ह्मण) .. ... हितार्थं धर्म-कीर्त्ति-वृद्ध्यर्थं च अपीडयित्वा कर-विष्टि-प्रणय-क्रियाभिः पौरजानपदं जनं स्वस्मात् कोशात् महता धनौघेन अनतिमहता च कालेन त्रिगुण-दृढ़तर-विस्तारायामं सेतुं विधाय सर्वतटे सुदर्शनतरं कारितम् इति।

अनुवाद– वह यह (तालाब) जनपद के लिए मौर्यवंशी राजा चन्द्रगुप्त के प्रांतीय शासक वैश्य पुष्यगुप्त के द्वारा बनवाया गया, मौर्यवंशी अशोक के लिए यवनराज तुषास्फ के द्वारा (सुराष्ट्र के प्रांतीय शासक के पद पर) आसीन होकर (जल निकास की) नालियों से अलंङ्कृत किया हुआ और उसी के द्वारा बनवाई हुई राजोचित व्यवस्था वाली, उस दरार में देखी गई प्रणाली से विस्तृत बांध....... (का निर्माण किया गया था)। .... गर्भ (में आने के समय) से लेकर अबाध रूप से प्राप्त लक्ष्मी के धारण करने वाले (उसके) गुणों के कारण सभी वर्णों के द्वारा पास जाकर रक्षा के लिए राजा के पद पर वरण किए हुए, संग्रामों को छोड़ कर, मृत्युपर्यन्त पुरुषों के वध से स्वयं को दूर रखने की सत्य प्रतिज्ञा वाले, सम्मुख आए हुए बराबर के शत्रु पर प्रहार करने और विशेष गुणों से हीन शत्रु ..... धारण की हुई करुणा वाले, स्वयं (शरण में) आए हुए जनपदों और चरणों में पड़े हुए (जनों को) आयु और शरण प्रदान करने वाले, डाकुओं, हिंसक जन्तुओं, वन्य पशुओं और रोगादि से पूर्व अनाक्रांत नगरों, वणिक्पथों और जनपदों वाले, अपने पराक्रम से जीते हुए, अनुरागपूर्ण समस्त प्रजा वाले, पूर्वी आकर और पश्चिमी अवन्ति, अनूपदेश, आनर्त, सुराष्ट्र, श्वभ्र, मारवाड़, कच्छ, सिंधु, सौवीर, कुकुर, अपरांत, निषाद आदि उसके प्रभाव से यथावत् धर्म, अर्थ और कामादि विषयों को प्राप्त होने वाले समग्र देशों के स्वामी, समस्तक्षत्रियों में प्रकट किए हुए (अपने) वीर शब्द से उत्पन्न गर्व के कारण किसी के भी वश में न होने वाले यौधेयों

को बलपूर्वक उखाड़ फेंकने वाले, दक्षिणापथ के स्वामी को बिना किसी छल कपट के दो बार हरा हरा कर भी सम्बन्ध की निकटता के कारण न उखाड़ फेंकने के कारण कीर्ति को प्राप्त करने वाले, विजय प्राप्त करने वाले, (राज्य से) भ्रष्ट राजाओं को (पुनः उनके राज्य) स्थापित करने वाले, यथार्थ रूप से हाथ उठाकर (निर्णय देने से) अर्जित किए धर्म के महान अनुराग वाले, व्याकरण, अर्थशास्त्र, संगीत, न्याय इत्यादि महाविद्याओं में पारंगत होने, धारण करने, मनन करने और व्यवहार में लाने से प्राप्त हुए विपुल कीर्त्ति वाले, घोड़े, हाथियों और रथों के प्रयोग, तलवार, ढाल और द्वंद युद्ध आदि (में प्रदर्शित) परमबल, लाघव और उत्तम क्रिया वाले, दिन प्रतिदिन दान व मान में श्रद्धा के शील वाले, अत्यधिक दान देने वाले, समुचित रूप से प्राप्त मालगुजारी व चुंगी के भागों से सोने, चांदी, हीरों, वैदूर्यमणि और रत्नों की राशियों से आप्लावित कोश वाले स्पष्ट, लघु, मधुर, रोचक और कांत शब्द संकेतों से उदार और अलङ्कृत गद्य पद्य से युक्त (काव्य के प्रयोग में दक्ष) चौड़ाई, लंबाई, ऊंचाई, स्वर, चाल, रंग, बल, सत्त्व आदि उत्तम (शारीरिक) लक्षणों (और) चिन्हों से युक्त सुंदर शरीर वाले, स्वयं (अपने पराक्रम से) महाक्षत्रप की उपाधि को धारण करने वाले, राजाओं की कन्याओं के स्वयंवरों में अनेक लड़ियों वाली जयमालाओं को प्राप्त करने वाले, महाक्षत्रप रुद्रदामा के द्वारा हजारों वर्षों के लिए, गायों और ब्राह्मणों के लिए, धर्म और कीर्त्ति की वृद्धि के लिए, नगरों और जनपदों के लोगों को कर, बेगार और प्रणयोपहार की क्रियाओं से पीड़ित किए बिना अपने कोश से, विपुल धनराशि के द्वारा, और थोड़े समय में, तीन गुणा अधिक दृढ़, चौड़े और लंबे बांध को बनवाकर सभी तटों पर और अधिक दर्शनीय बनवा दिया।

अस्मिन् अर्थे--------अनुष्ठितम् इति।

अस्मिन् अर्थे....... (च) महाक्षत्रपस्य मतिसचिवकर्मसचिवैः अमात्य-गुण-समुद्युक्तैः अपि अतिमहत्त्वात् भेदस्य-अनुत्साह-विमुखमतिभिः प्रत्याख्यातारंभं पुनः सेतु-बन्ध-नैराश्यात् हा हा भूतासु प्रजासु इह अधिष्ठाने पौर-जानपद-जन-अनुग्रहार्थं पार्थिवेन कृत्स्नानाम् आनर्त्त- सुराष्ट्रानां पालनार्थं नियुक्तेन पह्लवेन कुलैप-पुत्रेण अमात्येन सुविशाखेन यथावत् अर्थ-धर्म-व्यवहार-दर्शनैः अनुरागम् अभिवर्द्धयता शक्तेन, दान्तेन, अचपलेन, अविस्मितेन, आर्येण अहार्येण स्वधितिष्ठता-धर्म-कीर्त्ति-यशांसि भर्तुः अभिवर्द्धयता अनुष्ठितम् इति।

इस विषय में महाक्षत्रप के मतिसचिव और कर्मसचिवों के द्वारा अमात्य गुणों से युक्त होते हुए भी दरार के बहुत बड़ी होने के कारण, उत्साहहीनता से विमुख मति वाले, परित्यक्त पुनर्निर्माण के प्रयत्नवाला (यह बांध) सेतु के पुनः बंधने के प्रति निराशा से

प्रजाओं में हाहाकार मच जाने पर, यहां शासन में नगर निवासियों और जनपद के लोगों के अनुग्रह के लिए राजा के द्वारा समस्त आनर्त्त और सुराष्ट्र के पालन के लिए नियुक्त किए हुए पह्लव जातीय, कुलैप के पुत्र, अमात्य सुविशाख के द्वारा, समुचित रूप से अर्थ, धर्म और व्यवहार की देखभाल के कारण (प्रजा के) अनुराग को बढ़ाने वाले, शक्ति संपन्न, जितेन्द्रिय चंचलतारहित निरभिमानी, उत्तम आचरण वाले, (किसी भी परिस्थिति में) कर्तव्य च्युत न होने वाले, भली प्रकार शासन करने वाले, स्वामी के धर्म, कीर्त्ति और यश को बढ़ाने वाले (अमात्य सुविशाख के द्वारा) (यह बांध) बनवाया गया।

टिप्पणी

क्षत्रप– प्रांतीय शासकों को क्षत्रप कहा जाता था। ईरान के हखमानी साम्राज्य में इन्हें सत्रप कहा जाता था। ईरानी सम्राटों के अधीन क्षत्रप आदि उपाधियों को धारण करने वाले शक लोगों ने जब भारत के उत्तर पश्चिमी भाग में छोटे–बड़े राज्य स्थापित कर लिए तो ये उपाधियां यहां भी प्रचलित रहीं। प्रस्तुत अभिलेख में क्षत्रप और महाक्षत्रप दोनों उपाधियों का प्रयोग किया गया है।

पूर्वापराकरावन्ति– पूर्वी आकार और पश्चिमी अवन्ति इसका अर्थ है। ये दोनों मालव के ही भाग थे। अवन्ति उज्जयिनी का ही दूसरा नाम है। आकर उज्जयिनी से 40 मील उत्तरपूर्व में एक नगर है जिसका आधुनिक नाम आगरा है। कुछ विद्वानों के अनुसार यह अगर वालों का आदि निवास स्थान है।

अनूपनीवृत्– अनूपदेश। प्राचीन लेखों में नर्मदा नदी का कच्छ प्रदेश अनूपदेश के नाम से प्रसिद्ध है।

आनर्त– आधुनिक गुजरात का उत्तरी भाग। इसका मुख्य नगर आनर्तपुर या आनंदपुर था।

सुराष्ट– आधुनिक काठियावाड़

श्वभ्र– आधुनिक साबरमती नदी की तटवर्ती देश।

मरु– मरुस्थल प्रदेश, मारवाड़।

कच्छ– आधुनिक कछ प्रदेश।

सिंधु-सौवीर– सिंध प्रदेश, जो अब पाकिस्तान का एक प्रांत है। सिंध प्रदेश के निचले भाग को सौवीर तथा ऊपरी भाग को सिन्धु कहा जाता था

कुकुर– पूर्वी राजपूताना।

अपरान्त– अपरान्त का अर्थ है पश्चिमी–सीमा। यह पश्चिमी सागर (अरब सागर) के तट पर स्थित कोंकण प्रदेश है।

निषाद– संभवतः भील आदि निषाद जातियां इससे अभिप्रेत है। मालवा और मध्यभारत से इनका सम्बन्ध माना जा सकता है।

यौधेयाः– यौधेय नाम का वीर क्षत्रियों का एक गण था जो पंजाब के दक्षिणी भाग से सतलुज नदी के तटों पर निवास करते थे। विद्वानों के मतानुसार आज भी इनके वंशज बहावलपुर क्षेत्र पाकिस्तान में जोहिया या जय्या नाम से प्रसिद्ध है। वहां से यौधेय गण हरियाणा और राजस्थान के भागों में भी जा बसें। अभिलेख के अनुसार रुद्रदामन् ने हरियाणा के यौधेयगणों पर विजय प्राप्त की थी।

दक्षिणापथपति सातकर्णि– वस्तुतः वासिष्ठीपुत्र सातकर्णि की पत्नी रुद्रदामा की पुत्री थी, रुद्रदामा का जमाता, वासिष्ठीपुत्र सातकर्णी था।

वासिष्ठीपुत्र सातकर्णि का पिता गौतमीपुत्र सातकर्णि था। इस प्रकार रुद्रदामन् और गौतमीपुत्र सातकर्णि परस्पर सम्बन्धी थे। अभिलेख के अनुसार दक्षिणापथ के शासक सातकर्णी को रुद्रदामन् ने दो बार युद्धों में परास्त किया परंतु पारिवारिक सम्बन्धों को ध्यान में रखते हुए उसका वध न करके उसे जीवित ही छोड़ दिया।

बलि– उपज का छठा भाग जो राजा को कर के रूप में दिया जाता था।

शुल्क– नदी के घाट या नगर के नाके पर दिया जाने वाला कर।

पह्लव– विदेशी शासक पह्लव या पार्थियन् एक जाति का नाम है। शक, यवन, कंबोज आदि जनों की तरह ये भी भारत के उत्तर पश्चिमी भाग में आकर बस गए थे।

मतिसचिव– रुद्रदामन् के गिरनार अभिलेख में दो प्रकार के सचिवों का उल्लेख है– मतिसचिव और कर्मसचिव। ये सचिव अमात्य के समस्त गुणों से संपन्न थे मतिसचिव को धी (बुद्धि) सचिव या सलाहकार भी कहा जा सकता है। राजा किसी भी राजकीय कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व मतिसचिवों से मंत्रणा करता था। ये सचिव स्वतंत्र रूप से निर्णय प्रस्तुत कर सकते थे। इसी कारण इन्होंने सुदर्शन झील व बांध के जीर्णोद्धार के प्रति उत्साहहीनता प्रदर्शित की। ततः महाक्षत्रप रुद्रदामन के अमात्य सुविशाख द्वारा सुदर्शन झील के बांध का पुनर्निर्माण करवाया गया।

रुद्रदामन का गिरनार अभिलेख ऐतिहासिक, राजनीतिक धार्मिक, भौगोलिक तथा साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण है।

ऐतिहासिक महत्त्व

रुद्रदामा का वंश– रुद्रदामा के पूर्वजों और उनकी वंशपरंपराओं का वर्णन

अभिलेख में किया गया है। रुद्रदामा के पितामह का नाम महाक्षत्रप स्वामी चष्टन और पिता का नाम राजा क्षत्रप जयदामा था। पितामह चष्टन क्षत्रप को तथा रुद्रदामा को महाक्षत्रप की उपाधि से विभूषित बताया गया है। रुद्रदामा के पिता जयदामा की उपाधि क्षत्रप थी। इस प्राचीन ईरानी परंपरा के अनुसार भारतीय शक शासक क्षत्रप और महात्रप की उपाधियां धारण करते थे। चष्टन और उनके पिता के नाम विदेशी थे। परंतु रुद्रदामा तथा उसके पिता जयदामा के नाम शुद्ध संस्कृत नाम हैं। इससे प्रमाणित होता है कि इस विदेशी शकवंश ने भारतीय धर्म और संस्कृति पूर्णतया अपना लिया था।

सुदर्शन तालाब का इतिहास– गुजरात के जूनागढ़ नगर से लगभग दो किलोमीटर पूर्व की ओर गिरनार नामक पहाड़ी की एक शिला पर तीन शासकों के शिलालेख हैं–

- उत्तरपूर्वीय भाग में मौर्य सम्राट् अशोक (लगभग 273–232 ईसा पूर्व) के चौदह शिलाभिलेख
- पश्चिमी ओर रुद्रदामन् का गिरनार शिलाभिलेख (150 ई०)
- उत्तर पश्चिमी भाग में स्कन्दगुप्त का अभिलेख (लगभग 455 से 467 ई०)

  उपरोक्त सभी अभिलेख किसी न किसी रूप में सुदर्शन झील से संबंधित है। अशोक ने अपने चौदह शिलालेख अपने पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा निर्मापित इस झील के निकट प्रजा में धर्मप्रचार के लिए स्थापित करवाए थे। स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ (गिरनार) शिलाभिलेख पर्णदत्त के पुत्र चक्रपालित द्वारा सुदर्शन झील के बाढ़ से टूटे हुए बांध के जीर्णोद्धार का उल्लेख करता है। रुद्रदामा के अभिलेख में भी महाक्षत्रप रुद्रदामा के अमात्य सुविशाख द्वारा सुदर्शन झील के बांध के पुनर्निर्माण का वर्णन है। रुद्रदामन् के अभिलेख में यह स्पष्ट वर्णन है कि यह तालाब मौर्यसम्राट् चन्द्रगुप्त ने अपने प्रांतीय शासक पुष्यगुप्त के द्वारा बनवाया था। तदंतर मौर्यवंशी सम्राट् अशोक के प्रांतीय शासक यवनराज तुषास्फ ने इसे जल–निकास की छोटी बड़ी प्रणालियों की राजोचित व्यवस्था से संपन्न किया था। रुद्रदामा के शासनकाल में शकसंवत् 72 (150 ई०) के मार्गशीर्ष मास की कृष्णप्रतिपदा को प्रजाओं के हित के लिए, सम्पूर्ण आनर्त और सुराष्ट्र के पालनार्थ, पह्लवजातीय कुलैप के पुत्र प्रांतीय शासक सुविशाख की सहायता से तिगुनी दृढ़ता और विस्तार के साथ पुनः सुदर्शन झील का निर्माण करवा दिया गया था।

रुद्रदामा का व्यक्तित्व– भारतीय धर्म व संस्कृति का पूर्णरूपेण अनुसरण करने में संलग्न रुद्रदामन् एक कुशल प्रशासक के रूप में अपनी प्रजा का रंजन करते हैं। धर्मशास्त्रों में वर्णित तडाग, कूपादि निर्माण उनका जीणोद्धार, गौ–ब्राह्मण के कल्याणहेतु

कार्यों में रुचि, धर्म के प्रति महान् आस्था आदि महान् गुणों के आगार हैं। वेद, धर्म, अर्थ तथा काम के विषयों का सेवन समयानुसार अपनी इच्छा से करते हैं। वे विषयों के अधीन नहीं है। उनके आंतरिक गुणों का वर्णन तथा बाह्य गुणों का सुंदर वर्णन अभिलेख में किया गया है–**"न प्रमाणमानोन्मानस्वरगतिवर्णसारसत्त्वादिभिः परम-लक्षणव्यञ्जनैरूपेतकान्तमूर्तिना"** सभी वर्णों के लोगों ने मिलकर रुद्रदामा से प्रार्थना की कि उनकी भीषण जलप्लावन से रक्षा की जाए।

रुद्रदामन् कुशल प्रशासक, न्यायप्रिय, विद्वान्, वीर योद्धा तथा काव्यशास्त्र के भी ज्ञाता थे–

यथार्थहस्तोच्छ्र्यार्जितोर्जितधर्मानुरागेण शब्दार्थ-गान्धर्व- न्यायाद्यानां विद्यानां महतीनां पारण धारण-विज्ञान- प्रयोगावाप्ताविपुलकीर्त्तिना-----

राजनीतिक महत्त्व– अर्थशास्त्र में प्रतिपादित राजनीतिविषयक सिद्धांतों से भली भांति परिचित रुद्रदामन् ने शासन व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित किया। उनका राज्य अनेक प्रांतों में विभक्त था। आनर्त व सुंराष्ट्र का राज्यपाल अमात्य सुविशाख को नियुक्त किया था। राज्यपाल की नियुक्ति उनकी कार्य कुशलता के आधार पर ही की जाती थी। अमात्य सुविशाख की योग्यता के विषय में कहा है–

आनर्त्तसुराष्ट्राणां पालनार्थं नियुक्तेन पह्लवेन कुलैपपुत्रेण अमात्येन सुविशाखेन यथावत् अर्थधर्म-व्यवहारदर्शनैः अनुरागम् अभिवर्द्धयता शक्तेन दान्तेन, अचपलेन, अविस्मितेन, आर्येण, अहार्येण स्वधितिष्ठता धर्मकीर्त्तियशांसि भर्त्तुः अभिवर्द्धयता--------

कार्यकारी पार्षदों के रूप में मतिसचिवों (मंत्रियों) तथा कर्मसचिवों की व्यवस्था की थी। प्रजा से मालगुजारी और चुंगी आदि सामान्य कर ही प्राप्त किया जाता था। प्रस्तुत संदर्भ में महाकवि कालिदास विरचित रघुवंश महाकाव्य की सूक्ति का उल्लेख अतिशयोक्ति नहीं होगा–

प्रजानामेव भूत्यर्थं सः ताभ्यो बलिम् अग्रहीत्।
सहस्त्रगुणमुत्स्त्रष्टुम् आदत्ते हि रसं रविः।।

परन्तु सुदर्शन झील के बांध के पुनर्निर्माण के लिए रुद्रदामन् ने प्रजा को पीड़ित नहीं किया– **अपीडयित्वा करविष्टिप्रणयक्रियाभिः पौरजानपदं जनम्।**

युद्ध, विजय और राज्यविस्तार– रुद्रदामन् ने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की। अनेक प्रांतों को जीतकर अपने राज्य में सम्मिलित किया तथा राज्यभ्रष्ट राजाओं को पुनः उनके राज्य पर स्थापित किया। समस्त क्षत्रिय जातियों में प्रख्यात 'वीर' शब्द के

उच्चारण से उत्पन्न अभिमान के कारण गर्वित 'यौधेयों' को रुद्रदामन् ने बलपूर्वक उखाड़ फेंका। दक्षिणापथ के शासक सातकर्णी को भी दो बार युद्धों में परास्त करके पारिवारिक सम्बन्धों को ध्यान में रखते हुए उसका वध नहीं किया। रुद्रदामा ने अपने बलवीर्य से अनेक देशों को जीतकर अपने राज्य में सम्मिलित किया था। वे देश है- पूर्वी और पश्चिमी अवन्ति, अनूपदेश, आनर्त, सुराष्ट्र, श्वभ्र, मरू, कच्छ, सिन्ध, सौवीर, कुकुर, अपरांत, निषाद आदि। विशाल हृदय रुद्रदामा राज्य से भ्रष्ट हुए राजाओं को पुनः उनके राज्य पर प्रतिष्ठित कर देते थे- **भ्रष्टराज्यप्रतिपठापक।**

तात्कालिक वास्तुकला– वास्तुकला कितनी उत्कृष्ट कोटि की थी, इसका निदर्शन प्रत्यक्षतः सुदर्शन तडाग है। यह सुदर्शन तालाब मिट्टी और पत्थरों की लंबाई, चौड़ाई और ऊंचाई के कारण इस कुशलता से निर्मित किया गया था कि उनके जोड़ आपस में बन्धे होने के कारण दिखाई नहीं देते थे। पत्थरों की पंक्तियों के कारण तालाब पर्वत के समान दृढ़ था। जल निकास के लिए नालियों की समुचित व्यवस्था थी। सुरक्षा की दृष्टि से भी सुदर्शन तडाग महत्त्वपूर्ण था।

साहित्यिक महत्त्व– भारत में विक्रम की प्रारंभिक चार शताब्दियों में विदेशी शकों के प्रबल आक्रमणों के कारण भारत की अंतरंग दशा तथा राजनीतिक वातावरण नितांत अशान्त व क्षुब्ध था। गुप्तकाल में ललित कला का अभ्युदय संपन्न होने से संस्कृत काव्य का पुनर्जागरण मानकर मैक्समूलर ने विक्रम की आदिम शताब्दियों को कविता के अभाव का युग माना था। परंतु शकक्षत्रप रुद्रदामन् का गिरनार शिलालेख (78 शकसंवत् 150 ईस्वी, 207 विक्रमसंवत्) ने इस सिद्धांत को पूर्णतया भ्रान्त, निराधार और त्रुटिपूर्ण सिद्ध कर दिया। रुद्रदामन् ने ही सर्वप्रथम विशुद्ध संस्कृत भाषा में निबद्ध यह लेख प्रस्तुत किया।

अलंकृत गद्यकाव्य की शैली में उपनिबद्ध यह अभिलेख तात्कालिक काव्यरचना का एक सुंदर उदाहरण है। '**गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति**' के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इस अभिलेख का रचनाकार एक उत्कृष्ट कोटि का कवि रहा होगा। कवि ने रुद्रदामा को निम्न विशषणों से सुशोभित किया है- **स्फुटलघुमधुर-चित्रकान्तशब्दसमयोदारालंकृत-गद्यपद्य (काव्यविधानप्रवीणे) न।** इससे स्पष्ट होता है कि रुद्रदामा वैदर्भी रीति के अनेक गुणों से युक्त और अलंकृत गद्य तथा पद्य की रचना में प्रवीण थे। अपि च रुद्रदामा व्याकरण, अर्थशास्त्र, संगीत, न्याय आदि महान् विद्याओं के पारण, धारण और प्रयोग के कारण प्रख्यात थे।

गद्यरचना की परंपरा के अनुसार दीर्घवाक्यविन्यास तथा समासयुक्त पदावली का प्रयोग किया गया है। वस्तुतः उत्कृष्ट कोटि के गद्य प्रबन्धों में प्रायः तिङन्त क्रियाओं

का प्रयोग कम होता है। संपूर्ण अभिलेख में **वर्तते** और **आसीत्** इन दो तिङन्त क्रियाओं का तथा **कारितम्** तथा **अनुष्ठितम्** दो कृदंत क्रियाओं का प्रयोग प्राप्त होता है।

आ गर्भात् प्रभृति .... सुदर्शनतरं कारितमिति तीस पंक्तियों में उत्कीर्ण किया गया उपरोक्त वाक्य सबसे लम्बा वाक्य है।

'ओजः समासभूयस्त्वमेतद् गद्यस्य जीवितम्' काव्यादर्श के इस कथनानुसार ओज गुण से युक्त समासबहुला शैली गद्य विद्या का प्राण है। दंडी के इस सिद्धांत का परिपालन सर्वप्रथम रुद्रदामा के इस अभिलेख में ही प्राप्त होता है। वैदर्भी रीति और गौड़ी रीति का प्रयोग वर्ण्यविषय को आधार बनाकर किया गया है। उर्जयत् पर्वत से निकलने वाली नदियों की बाढ़ और भयंकर तूफान से पहाड़ के शिखरों, पेड़ों, अट्टालिकाओं आदि के विध्वंस का ओजगुणयुक्त सजीव वर्णन किया है–

"गिरिशिखरतरुतटाट्टालकोपतल्पद्वारशरणोच्छ्रयविध्वंसिना"

शब्दांलकारों तथा अर्थालंकारों का स्वभाविक प्रयोग किया गया है। **'अर्थकामविषयाणां विषयाणाम्** यमक अलंकार का, **गिरीनगरात्** (ग् र) तथा **सृष्टवृष्टिना** (ष्, ट्) छेकानुप्रास का सुंदर उदाहरण हैं। **'युगनिधनसदृशपरमघोरवेगेन' मरुधन्वकल्पं तडागम्' पर्वतपादस्पर्धि तडाकम्'** उपमा अलंकार के निदर्शन है।

150 ईस्वी के लगभग यद्यपि स्थानीय भाषा प्राकृत रही होगी परंतु संस्कृत भाषा भी पर्याप्त लोक प्रचलित प्रतीत होती है। संभवतः यही कारण है कि सुदर्शन बांध के पुनर्निर्माण की प्रजाजनों को सूचना सरल व प्रवाहमयी संस्कृत भाषा में दी गई। फिर भी कई स्थानों पर स्थानीय प्राकृत भाषा का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। विद्वानों के मतानुसार रामायण और महाभारत की भाषा से भी अभिलेख की भाषा प्रभावित है **वीशदुत्तराणि** में प्राकृत शब्द **वीशद्** का प्रयोग **तीशद्** (त्रिंशत्) आदि की समता के आधार पर हुआ है। रामायण और महाभारत में भी अनेक स्थानों पर विंशत् का प्रयोग मिलता है। जबकि शुद्ध संस्कृत रूप विंशति है। **'अवजीत्यावजीत्य'** में इकार के स्थान पर ईकार प्रयोग भी स्थानीय प्राकृत भाषा के कारण है। **पत्या** के स्थान पर **पतिना** का प्रयोग यद्यपि व्याकरण के नियम (पतिः समासे एवं–पा० 1/4/8) के विरुद्ध है किंतु वेद, रामायण और महाभारत में यह प्रयोग उपलब्ध है। **एकार्णवभूतायाभिव पृथिव्यां भूतायां** में व्याकरण की प्रक्रिया के अनुसार **एकार्णवीभूतायां** होना चाहिए था। यहां कृतायां पद भी अधिक है क्योंकि पहले ही भूतायां पद का प्रयोग हो चुका है। इस प्रकार के अनेक उदाहरणों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि द्वितीय शताब्दी के मध्यकाल में साहित्यिक रचनाओं में

रामायण और महाभारत की भाषा का विशेष प्रभाव तो रहा ही होगा, साथ ही लोकप्रचलित भाषा के रूप में संस्कृत को प्रस्तुत किया गया है।

तात्कालिक काव्यशास्त्र के सिद्धांतों से परिचित प्रस्तुत अभिलेख का रचयिता वैदर्भी शैली में काव्यरचना में कुशल था।

• • •

तृतीय अन्विति

समुद्रगुप्त व चन्द्र के स्तम्भ अभिलेख

समुद्रगुप्त का एरण स्तम्भ अभिलेख

मध्य प्रदेश के सागर जिले में एरण (एरिकिण) ग्राम के सुप्रसिद्ध वराह मन्दिर के निकट पड़े एक चौकोर स्तम्भ खंड पर उत्कीर्ण यह अभिलेख कोलकाता के इंडियन म्यूज़िम में सुरक्षित है। समुद्रगुप्त कालीन इस अभिलेख की लिपि मध्य भारतीय ब्राह्मी है। अक्षरों का शिरोभाग वर्गाकार होने के कारण अंग्रेजी में इस लिपि को बॉक्स-हेडिड (Box headed) कहा जाता है। संस्कृत भाषा में लिखा गया यह अभिलेख किसी सामंत अथवा राज्यपाल द्वारा एरिकिण (एरण) में मन्दिर बनवाए जाने के उल्लेख एवं अपने अभिभावक महाराजाधिराज समुद्रगुप्त की प्रशस्ति के रूप में विशेष महत्त्वपूर्ण है। तिथिविहीन इस प्रशस्ति की प्रारंभिक पंक्तियां 1-6, अर्थात् संपूर्ण प्रथम पद्य और द्वितीय पद्य का पूर्वार्द्ध टूट कर नष्ट हो गया है। वसंततिलका छंद में निबद्ध छः पूर्ण पद्यों की भाषा सरल व प्रवाहमयी है। समुद्रगुप्त के पराक्रम का वर्णन वीर रस संवलित है।

7. '[----] सुवर्ण्ण-दाने
8. [न्यक्का]रिता नृपतयः पृथु-राघवाद्याः [।।*]2
9. [भूपो] बभूव धनदान्तक-तुष्टि-कोप-तुल्यः
10. [पराक्क]म-नयेन समुद्रगुप्तः [।*]
11. [यं प्रा]प्य पार्त्थिव-गणस्सकलः पृथिव्याम्
12. [पर्य्य]स्य-राज्य-विभव-द्ध्रुतमास्थितो [ऽ*] भूत् [।।*]3
13. [ताते]न भक्ति-नय-विक्क्रम-तोषितेन
14. [यो] राज-शब्द-विभवैरभिषेचनाद्यैः [।*]
15. [सम्मा]नितः परम-तुष्टि-पुरस्कृतेन
16. [सोऽयं ध्रु]वो नृपैरप्रतिवार्य्य-वीर्य्यः[।।*]4

17. [श्रीर]स्य पौरुष-पराक्रम-दत्त-शुल्का
18. [हस्त्य]श्व-रत्न-धन-धान्य-समृद्धि-युक्ता [।*]
19. [नित्य]ङ्गृहेषु मुदिता बहु-पुत्र-पौत्र-
20. [स]ङ्क्रामिणी कुल-वधु व्रतिनी निविष्टा [।।*5]
21. [यस्य]ोर्ज्जितं समर-कर्म्म- पराक्रमेद्धं
22. [शुभ्रं] यशः सु-विपुलम्परिबम्भ्रमीति [।*]
[कर्म्मा]णि यस्य रिपवश्च रणोर्ज्जितानि
23. [स्व]प्नान्तरेष्वपि विचिन्त्य परित्रसन्ति [।।*]6
24. [----][-]प्तः (?) स्व-
भोग-नगरैरिकिण-प्रदेशे [।*]
25. [----] [सं] स्थापितस्स्व-यशसः
परिबृङ्हनार्त्थम्, [।।*]6
26. [----] [--]वो नृपतिराह यदा [--]
[।*]

2. न्यक्कारिताः नृपतयः सुवर्णदाने पृथुराघवाद्याः

अन्वय- सुवर्णदाने प्रथुराघवाद्याः नृपतयः न्यक्कारिताः।

अनुवाद- सुवर्ण दान (देने) में पृथु और रघुकुल में उत्पन्न राजाओं को (जिस समुद्रगुप्त ने) तिरस्कृत कर दिया।

3. भूपो बभूव धनदान्तक-तुष्टि-कोप-
तुल्यःपराक्रम-नयेन समुद्रगुप्तः।
यं प्राप्य पार्थिवगणस्सकलः पृथिव्याम्
पर्यस्तराज्यविभवद्धुतमास्थितोऽभूत्।।

अन्वय- धनदान्तकतुष्टिकोपतुल्यः पराक्रमनयेन समुद्रगुप्तः भूपो बभूव। यं प्राप्य सकलः पार्थिवगणः पर्यस्तराज्य विभवद् धुतमास्थितः अभूत्।

अनुवाद– कुबेर और यमराज के समान (क्रमशः) कृपा व क्रोध करने वाला, (जो अपने) पराक्रम तथा राजनीति (के गूढ़ ज्ञान) के कारण (समुद्रगुप्त नाम का) राजा हुआ। जिस (समुद्रगुप्त) को (युद्ध में सम्मुख) प्राप्त करके पृथ्वी पर समस्त राजागण राज्य वैभव से वंचित होकर उन्मूलित किए गए।

4. तातेन भक्तिनयविक्रमतोषितेन,
यो राजशब्दविभवैः अभिषेचनाद्यैः।
सम्मानितः परमतुष्टिपुरस्कृतेन,
सोऽयं ध्रुवो नृपैरप्रतिवार्यवीर्यः।।

अन्वय– (यस्य समुद्रगुप्तस्य) भक्तिनयविक्रतोषितेन परमतुष्टिपुरस्कृतेन तातेन यः (समुद्रगुप्तः) राजशब्दविभवैः अभिषेचनाद्यैः सम्मानितः। ध्रुवः (ध्रुवम्) अयं सः (समुद्रगुप्तः) नृपैः अप्रतिवार्यवीर्यः (अस्ति)

अनुवाद– जिस समुद्रगुप्त के) भक्ति, नीति और पराक्रम से संतुष्ट एवम् अत्यंत हर्षित उसके पिता के द्वारा 'राज' शब्द रूपी वैभव तथा राज्य अभिषेक आदि सम्मानों से सम्मानित किया गया। निश्चय ही यह (स्व पराक्रम से) अन्य (शत्रु) राजाओं द्वारा (भय के कारण) सामना न किए जाने योग्य (राजा–समुद्रगुप्त) है।

5. श्रीरस्य पौरुषपराक्रमदत्तशुल्का,
हस्त्यश्वधन–धान्यसमृद्धियुक्ता ।
नित्यङ्गृहेषु मुदिता बहुपुत्रपौत्र–
सङ्क्रामिणी कुलवधुव्रतिनी निविष्टा।।

अन्वय– पौरुषपराक्रमदत्तशुल्का, हस्त्यश्वधनधान्यसमृद्धियुक्ता, नित्यङ्गृहेषु मुदिता, बहुपुत्रपौत्रसंक्रामिणी कुलवधुव्रतिनी अस्य (समुद्रगुप्तस्य) श्रीः निविष्टा।

अनुवाद– पौरुष और पराक्रम का शुल्क देकर प्राप्त की गई, हाथी, घोड़े, रत्न, धन, धान्य, समृद्धि से युक्त, सदैव राजग्रहों में प्रसन्न, बहुत से पुत्र–पौत्रों के साथ (मिलकर) रहने वाली, कुलवधु व्रत का पालन करने वाली उस (समुद्रगुप्त की) पत्नी (लक्ष्मी) स्थित थी।

6. यस्योर्जितं समरकर्मपराक्रमेद्धं,
शुभ्रं यशः सुविपुलम्परिबम्भ्रमीति।
कर्माणि सस्य रिपवश्च रणोर्जितानि
स्वप्नान्तरेष्वपि विचिन्त्य परित्रसन्ति।।

अन्वय- समरकर्मपराक्रमेद्धं यस्योर्जितं शुभ्रं यशः सुविपुलं परिबम्भ्रमीति। यस्य रणोर्जितानि कर्माणि स्वप्नान्तरेष्वपि विचिन्त्य रिपवः परित्रसन्ति।

अनुवाद- युद्धों में (वीरता रुपी) कर्म के पराक्रम से प्रदीप्त जिसकी शक्ति (और) शुभ्र यश चारों ओर व्याप्त हो रहा है। रणभूमि में प्रदर्शित वीरतायुक्त कर्मों को (अपने) स्वप्नों के अंतरालों में भी स्मरण करके जिसके (समुद्रगुप्त के) शत्रु भय भीत रहते थे।

7. प्तः- (?)

स्वभोगनगरैरिकिणप्रदेशे।

....

[सं] स्थापितस्स्वयशसः परिबृङ्हनार्थम्।।

अन्वय- स्वभोग नगरैरिकिणप्रदेशे (यः) स्वयशसः परिबृङ्हनार्थं (विजयस्तम्भः) संस्थापितः।

अनुवाद- अपनी भोग नगरी एरिकिण प्रदेश में अपने यश की वृद्धि के लिए (इस विजय स्तम्भ) को स्थापित किया।

8. ...... वो नृपति राह यदा .....

..... यदा वः नृपतिः आह .....

जब तुम्हारे महाराज ने कहा-

समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त प्रथम और लिच्छवी राजकुमारी कुमार देवी के पुत्र थे। इनकी पत्नी का नाम दत्ता देवी था। अभिलेख के पंचम पद्य में समुद्रगुप्त की पत्नी का सुंदर वर्णन है। गुप्त वंश के प्रमुख शासकों को निम्न तालिका में प्रदर्शित किया है-

चन्द्रगुप्त प्रथम- 319	-335	ईस्वी लगभग
समुद्रगुप्त- 335	-375	ईस्वी लगभग
चन्द्रगुप्त द्वितीय- 380	-414	ईस्वी लगभग
कुमारगुप्त- 415	-455	ईस्वी लगभग
स्कंदगुप्त- 455	-467	ईस्वी लगभग

भारत का नेपोलियन कहा जाने वाला समुद्रगुप्त असाधारण योद्धा, समरविजेता तथा अजातशत्रु था। वह युद्ध क्षेत्र में स्वयं वीरता और साहस के साथ अपने शत्रुओं से मुकाबला करता था। इसी कारण स्वप्न अंतरालों में भी समुद्रगुप्त के पराक्रम को याद करके शत्रु भयभीत हो जाते थे। समुद्रगुप्त का राज्य-काल इतिहास में 'स्वर्णयुग' के नाम से जाना जाता था। '**धनदान्तकतुष्टिकोपतुल्यः**' समुद्रगुप्त का यह विशेषण

महाकवि कालिदास विरचित रघुवंश महाकाव्य में वर्णित राजा दिलीप के गुणों से साम्य प्रदर्शित करता है–

भीमकान्तैर्नृपगुणैः स बभूवोपजीविनाम्।
अधृष्यश्चाभिगभ्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः।। 1–16

समुद्रगुप्त ने भारत को एकता के सूत्र में बांधने का महान् कार्य किया। दिग्विजयी शासक समुद्रगुप्त ने महान् चक्रवर्ती सम्राट् के रूप में लगभग 40 वर्ष तक शासन किया।

चन्द्र का मेहरौली लौह स्तम्भ अभिलेख

गुप्तकालीन ब्राह्मी लिपि तथा संस्कृत भाषा में तीन श्लोकों तथा छः पंक्तियों का यह अभिलेख दिल्ली में मेहरौली गांव के कुतुब मीनार के निकट स्थित लौह स्तम्भ पर उत्कीर्ण किया गया है। इसमें 'चन्द्र' नामक राजा की कीर्ति का उल्लेख है। राजा 'चन्द्र' द्वारा विष्णुपद नाम की पहाड़ी पर भगवान् विष्णु के मन्दिर के सम्मुख ध्वज के रूप में वर्तमान उत्कीर्ण स्तम्भ की स्थापना तथा प्रशस्ति में चन्द्र के प्रताप तथा विजयों का वर्णन है। स्तम्भ की ऊंचाई लगभग सात मीटर है। कुतुबुद्दीन ऐबक ने 13 वीं शताब्दी मैं कुतुबमीनार की स्थापना की थी।
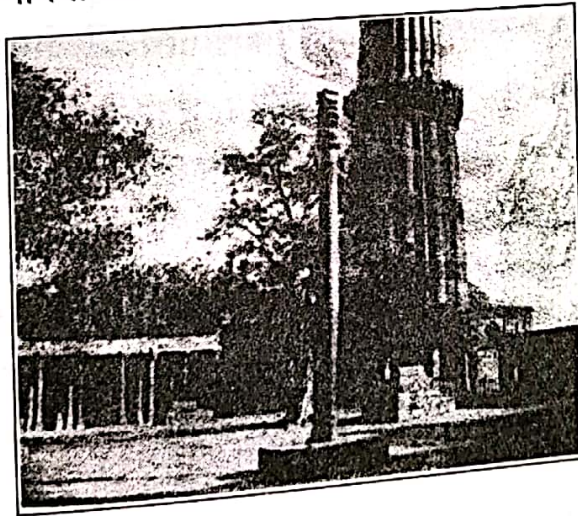
1. यस्योद्वर्त्तयतः प्रतीपमुरसा शत्रून्त्समेत्यागतान्वङ्गेष्वाहववर्त्तिनो [ऽ] भिलिखिता खड्गेन कीर्त्तिभुजे [।]
2. तीर्त्वा सप्त मुखानि येन समरे सिन्धोर्ज्जिता बाह्लिका यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्व्वीर्य्यानिलैर्द्दक्षिणः [।।]
3. खिन्नस्येव विसृज्य गां नरपतेर्ग्गामाश्रितस्येतरां मूर्त्या कर्म्मजितावनि गतवतः कीर्त्या स्थितस्य क्षितौ [।]

4. शान्तस्येव महावने हुतभुजो यस्य प्रतापो महान्नाद्याप्युत्सृजति प्रणाशितरिपोर्य्यत्नस्य शेषः क्षितिम् [।।]
5. प्राप्तेनस्वभुजार्ज्जितञ्च सुचिरञ्चैकाधिराज्यं क्षितौ चन्द्राह्वेन समग्रचन्द्रसदृशीं वक्त्रश्रियं बिभ्रता [।]
6. तेनायं प्रणिधाय भूमिपतिना भावेन विष्णो मतिं प्रान्शुर्व्विष्णुपदे गिरौ भगवतो विष्णोर्ध्वजः स्थापितः [।।]

यस्योद्वर्त्तयतः प्रतीपमुरसा शत्रून्त्समेत्यागतान्
वङ्गेष्वाहववर्तिनोऽभिलिखिता खड्गेन कीर्तिर्भुजे।
तीर्त्त्वा सप्त मुखानि येन समरे सिन्धोर्ज्जिता बाह्लिका
यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्व्वीर्य्यनिलैर्दक्षिणः।।1।।

अन्वय– बङ्गेषु समेत्य आगतान् आहववर्तिनः शत्रून् समरे उरसा प्रतीपम् उद्वर्तयतः यस्य भुजे खड्गेन कीर्तिः अभिलिखिता, येन सिन्धोः सप्तमुखानि तीर्त्वा बाह्लिकाः जिताः, यस्य वीर्यानिलैः दक्षिणः जलनिधिः अद्य अपि अधिवास्यते।

अनुवाद– बंगाल देश में मिलकर आए हुए युद्ध में प्रवृत्त शत्रुओं को युद्ध में छाती (के बल) से पीछे धकेलते हुए जिसकी भुजा पर तलवार के द्वारा कीर्ति लिखी गई, जिसके द्वारा सिन्धु के सात मुखों (धाराओं) को पार करके वाह्लीक देश जीत लिया गया, जिसकी पराक्रम रूपी वायु से दक्षिण समुद्र आज भी सुवासित हो रहा है।

खिन्नस्येव विसृज्य गां नरपतेर्गामाश्रितस्येतरां
मूर्त्या कर्म्मजितावनिं गतवतः कीर्त्या स्थितस्य क्षितौ।
शान्तस्येव महावने हुतभुजो यस्य प्रतापो महान्
नाद्याप्युत्सृजति प्रणाशितरिपोर्य्यत्नस्य शेषः क्षितिम्।।2।।

अन्वय- खिन्नस्य इव गां विसृज्य इतरां गाम् आश्रितस्य मूर्त्या कर्मजितावनिं गतवतः कीर्त्या क्षितौ स्थितस्य प्रणाशितरिपोः यस्य नरपतेः यत्नस्य शेषः महान् प्रतापः महावने शान्तस्य हुतभुजः प्रतापः इव अद्यापि क्षितिं न उत्सृजति।

अनुवाद- मानों थके हुए (अतः) पृथिवी को छोड़कर दूसरे लोक (स्वर्ग) का आश्रय लेने वाले (सूक्ष्म) शरीर से कर्मों के द्वारा जीते हुए लोक (स्वर्ग) में गए हुए (परंतु) यश से पृथिवी पर विद्यमान, शत्रुओं को नष्ट करने वाले जिस राजा के प्रयत्न का शेष महान् प्रताप महावन में (वन को जलाकर) शांत हुई अग्नि के प्रताप (ऊष्णता) की तरह आज भी पृथ्वी को नहीं छोड़ रहा है।

प्राप्तेन स्वभुजार्ज्जितं च सुचिरं चैकाधिराज्य क्षितौ
चन्द्राह्वेन समग्रचन्द्रसदृशीं वक्त्रश्रियं बिभ्रता।
तेनायं प्रणिधाय भूमिपतिना धावेन विष्णौ मतिं
प्रान्शुर्विष्णुपदे गिरौ भगवतो विष्णोर्ध्वजः स्थापितः।।3।।

अन्वय- सुचिरं क्षितौ स्वभुजार्जितम् एकाधिराज्यं प्राप्तेन समग्र चन्द्रसहशीं वक्त्रश्रियं बिभ्रता चन्द्राह्वेन धावेन तेन भूमिपतिना विष्णौ मतिं प्रणिधाय विष्णुपदे गिरौ प्रांशुः अयं भगवतः विष्णोः ध्वजः स्थापितः।

अनुवाद- दीर्घकाल तक पृथिवी पर अपनी भुजाओं से उपार्जित एकच्छत्र राज्य को प्राप्त करने वाले, संपूर्ण चन्द्रमा (पूर्णिमा) जैसी मुख की शोभा को धारण करने वाले चन्द्र (नाम से) पुकारे जाने वाले, उस पवित्र राजा के द्वारा विष्णु में मन को (भक्ति से) स्थापित करके, विष्णुपद (नामक) पर्वत पर ऊंचा यह भगवान विष्णु का ध्वज स्थापित किया गया।

टिप्पणी

वाह्लिकाः- कुछ विद्वान् वाह्लिक का अर्थ मध्य एशिया में स्थित आधुनिक बल्क करते हैं जहां वंक्षु नदी बहती है। अन्य विद्वान् वाह्लिक को पंजाब की जाति विशेष मानते हैं। उनका मत है कि यह जाति बल्ख से आकर पंजाब में बस गई थी। इसी को कालांतर में वाहीक कहा जाने लगा। महाभारत में वाहीक को पंजाब का निवासी बताया है-

पञ्चानां सिन्धुषष्ठानां नदीनां येऽन्तराश्रिताः।
तान् धर्मबाह्यानशुचीन् वाहीकानपि वर्जयेत्।।
विहश्च नाम हीकश्च विपाशायां पिशाचकौ।
तयोरपत्यं वाहीका नैषा सृष्टिः प्रजापते।।
(8-44, 7, 8)

पांडु की दूसरी पत्नी को महाभारत में वाह्लीकी कहा है। पांडु की मृत्यु पर उसके प्रति निम्नलिखित शब्द इस तथ्य की पुष्टि करते हैं-

धन्या त्वमसि वाह्लीकि मत्तो भाग्यतरा तथा।
दृष्टवत्यसि यद् वक्त्रं प्रहृष्टस्य महीयतेः महीपतेः।।

(1-124-21)

सिंधोः सप्तमुखानि- शतद्रु, विपाशा, इरावती, चन्द्रभागा और वितस्ता- ये पूर्व की ओर से सिंधु में मिलने वाली पंजाब की पांच नदियां हैं। अन्य दो कुंभा और स्वयं सिंधु है, जो पश्चिम की ओर काबुल प्रदेश से आती है। इस प्रकार शतद्रु, विपाशा, इरावती, चन्द्रभागा, वितस्ता, कुंभा तथा सिंधु इन सात नदियों को सिंधु के मुख कहा जाता है। सिंधु एक महानद है जो इन सात नदियों के द्वारा जल ग्रहण करके अपने बृहद्‌ाकार को ग्रहण करता है इसलिए ये नदियां सिंधु नद के सात मुख माने गए हैं।

दक्षिणः जलनिधिः- आधुनिक भारत-महासागर या हिंद महासागर, दक्षिण महासागर के नाम से जाना जाता है। दक्षिण महासागर के पूर्वी और पश्चिमी भाग को बंगाल की खाड़ी और अरब सागर कहा जाता है। प्राचीन साहित्य में इन्हें पूर्व समुद्र तथा पश्चिम समुद्र कहा गया है।

प्रथम पद्य में दिग्विजयी राजा चन्द्रगुप्त द्वितीय के राज्य की चारों सीमाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। पूर्व में बंग, दक्षिण में दक्षिण जलनिधि, उत्तर में वाह्लीक तथा पश्चिम में सिन्धु मुख।

चन्द्राह्वेन- चन्द्र नामक राजा का पूर्ण नाम न प्राप्त होने के कारण तथा अभिलेख के तिथिविहीन होने के कारण इतिहासकारों द्वारा 'चन्द्र' नाम का निर्णय कर पाना एक समस्या बन गया। भारतीय इतिहास में चन्द्र शब्द का प्रयोग पांच शासकों के नाम के साथ हुआ है।

चन्द्रगुप्त मौर्य (लगभग 321-297 ईस्वी पूर्व) महरौली स्तम्भ अभिलेख संस्कृत भाषा तथा गुप्तकालीन ब्राह्मी लिपि में लिखा गया है। परंतु मौर्य काल में प्राकृत भाषा तथा मौर्य कालीन ब्राह्मी लिपि प्रचलित थी, अतः यह 'चन्द्र' चन्द्रगुप्त मौर्य नहीं हो सकते।

कुछ विद्वानों द्वारा कुषाण वंशी **कनिष्क** का 'चन्द्र' उपनाम प्राप्त होने के आधार पर दिया गया तर्क सर्वथा अनुचित है।

सुसुनिया पर्वत लेख में वर्णित **चन्द्रवर्मन्** नामक पुष्करणा के राजा से भी 'चन्द्र' की समानता सिद्ध न हो सकी।

चन्द्रगुप्त प्रथम (319-335 ईस्वी) से चन्द्र की समता का निराकरण करते हुए विद्वानों का कहना है कि चन्द्रगुप्त प्रथम ने सिंधु के सप्तमुखों को पार करके वाह्लीक देश को कभी नहीं जीता।

डॉ० दिनेश चन्द्र सरकार प्रभृति अनेक विद्वानों ने प्रामाणिक तथ्यों के आधार पर इस मत की स्थापना की है कि मेहरौली लौह स्तम्भ अभिलेख का चन्द्र गुप्तवंशीय चन्द्रगुप्त द्वितीय ही है। उनका कहना है चन्द्रगुप्त द्वितीय का नाम चन्द्र रूप में उनके तांबे के सिक्कों पर भी उपलब्ध है। उदयगिरि गुहालेख में चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा की गई एक दिग्विजय की सूचना है। चन्द्रगुप्त द्वितीय का विष्णु भक्त होना भी प्रमाणित किया गया है।

विष्णुपदे गिरौ– भगवान् विष्णु के पदचिन्हों से अंकित 'विष्णुपद गिरि' एक पर्वत का नाम है। रामायण महाभारत में इसे विपाशा (व्यास) नदी के निकट बताया है। ऐसा उल्लेख है कि राजा दशरथ का निधन हो जाने पर भरत को ननिहाल से लाने के लिए अयोध्या से भेजे गए दूत कैकेय देश में पहुंचने के लिए वाहीक (पंजाब) से गुजरते हैं। वहां विपाशा के साथ विष्णुपद के भी दर्शन करते हैं–

ययुर्मध्येन वाहीकान् सुदामानं च पर्वतम्।
विष्णोः पदं प्रेक्षमाणा विपाशां चापि शाल्मलीम्।।

रामायण–2 I68 I18

महाभारत में विष्णुपद को एक तीर्थ के रूप में विपाशा के साथ वर्णित किया गया है।

एतद् विष्णुपदं नाम दृश्यते तीर्थमुत्तमम्।
एषा रम्या विपाशा च नदी परमपावनी।।

महाभारत–3 I130 I8

'खिन्नस्येव विसृज्य गां नरपतेः गामाश्रितस्येतराम्' के आधार विद्वानों का यह मत है कि मेहरौली लौह स्तम्भ पर उत्कीर्ण अभिलेख चन्द्र की मृत्यु के पश्चात् लिखा गया। परंतु अन्य विद्वानों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि अभिलेख चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल में लिखा गया। यहां 'नरपतिः' शब्द का प्रयोग चन्द्रगुप्त द्वितीय के लिए नहीं अपितु उनके पिता समुद्रगुप्त के लिए स्वीकार करते हैं। मेहरौली लौह स्तम्भ पर उत्कीर्ण अभिलेख साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। शार्दूलविक्रीड़ित छंद में उपनिबद्ध तीन पद्य एक लघु काव्य का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। वीर–रस प्रधान प्रथम दो पद्यों में अर्थ गाम्भीर्य दृष्टिगोचर होता है। भाषा सरल व प्रवाहमयी है। वैदर्भी शैली का सुंदर प्रयोग है।

वीर्यानिलैः (पराक्रम रूपी वायु) में रूपक अलंकार, **'खिन्नस्येव विसृज्य गां'** यहां उत्प्रेक्षा अलंकार, **समग्रचन्द्रसदृशीं वक्त्रश्रियं विभ्रता** में उपमा अलंकार का प्रयोग सुंदर व स्वाभाविक है।

• • •

चतुर्थ अन्विति

बीसलदेव का दिल्ली-टोपरा स्तम्भ अभिलेख

दिल्ली के चौहान वंशी (चाहमानवंशी) राजा विग्रहराज (वीसलदेव, बीसलदेव) ने मौर्यवंशीय अशोक के स्तम्भ पर उत्कीर्ण किए गए धर्मोपदेश के नीचे इस अभिलेख को उत्कीर्ण करवाया था। मूल में यह प्रस्तर स्तम्भ हरियाणा में यमुनानगर से कुछ दूर पश्चिम की ओर टोपरा गांव में स्थित था। विक्रम की 15वीं शताब्दी में फिरोजशाह तुगलक इस स्तम्भ को वहां से उखड़वाकर यमुना के मार्ग से दिल्ली ले आए थे। यह स्तम्भ दिल्ली के कोटला फिरोजशाह में स्थित है। इस अभिलेख की तिथि विक्रम संवत् 1220, वैशाख शुति (शुक्ल तिथि) 15 है (1163 ई०)। इसकी भाषा संस्कृत और लिपि 13वीं शताब्दी की देवनागरी है। इस अभिलेख में शाकंभरी चौहान नरेश वीसलदेव (बीसलदेव) के वीरचरितों का उल्लेख है। राधा कांत शर्मा ने इस अभिलेख को पढ़ा था।

भाग-क

ॐ [।।*] संवत् 1220 वैशाख-शुति 14 [।।*]

शाकंभरी-भूपति-श्रीमदवेल्लदे-

वात्मज-श्रीमद्वीसलदेवस्य।।

1. ॐ [।।*] अंभो नाम रितु-प्रिया-नयनयोः प्रत्यर्थि-दंतान्तरे प्रत्यक्षाणि तृणानि वैभव-मिलत्काष्ठं यशस्तावकं।
2. मार्ग्गो लोक-विरूद्ध एव विजनः शून्यं मनो विद्विषां श्रीमद्विग्रह राजदेव भवतः प्राप्ते प्रयाणोत्सवे।। [1*]
3. लीला-मन्दिरसोदरेषु भवतु स्वांतेषु वाम-भ्रुवां शत्रूणां तु न विग्रह-क्षितिपते न्याय्यो [ऽ*]त्र वासस्तव।
4. शंका वा पुरुषोत्तमस्य भवतो नास्त्येव वारां-निधेन्निर्म्मथ्यापहृत श्रियः किमु भवान्क्रोडे न निद्रायितः।। [2*]

भाग-ख

1. ॐ।। आ विंध्यादा हिमाद्रेर्व्विरचित-विजयस्तीर्थ-यात्रा-प्रसंगादुद्ग्रीवेषु प्रहर्त्ता नृपतिषु विनमत्कन्धरेषु प्रसन्नः।
2. आर्यावर्त्तं यथार्थं पुनरपि कृतवान्म्लेच्छ-विच्छेदनाभिद्देवः शाकंभरीन्द्रो जगति विजयते वीसल-क्षोणिपालः।। [3*]
3. ब्रू (ब्रू) ते संप्रति चाहमान-तिलकः शाकंभरी-भूपतिः श्रीमद्विग्रहराज एष विजयी संतानजानात्मनः।
4. अस्माभिः करदं व्यधापि हिमवद्विध्यांतरालं भुवः शेष-स्वीकरणाय मा [ऽ*]स्तु भवतामुद्योग- शून्यं मनः।। [4*]
5. संवत् श्री-वि (वै) क्रमादित्ये १२२० वैशाख-शुति १५ गुरौ [।।*] लिखितमिदं राजादेशात् (ज्) ज्योतिषिक-श्री-तिलकराज-प्रत्यक्षं गौडान्वय-कायस्थ-माहव-पुत्र-श्रीपतिना।
6. अत्र समये महामंत्री राजपुत्र-श्री-सल्लक्षणपालः।।

ओं।। संवत् १२२० वैशाख शुति १५।।

शाकम्भरीभूपतिश्रीमदावेल्लदेवात्मजश्रीमद्वीसलदेवस्य

ओं।। आम्भो नाम रिपुप्रियानयनयोः प्रत्यर्थिदन्तान्तरे

प्रत्यक्षाणि तृणानि वैभवमिलत्काष्ठं यशस्तावकम्।

मार्गो लोकविरूद्ध एव विजनः शून्यं मनो विद्विषाम्

श्रीमद्विग्रहराजदेव! भवतः प्राप्ते प्रयाणोत्सवे।।1।।

अन्वय- श्रीमद्विग्रहराजदेव! भवतः प्रयाणोत्सवे प्राप्ते रिपुप्रियानयनयोः अम्भो नाम, प्रत्यर्थिदन्तातरे तृणानि प्रत्यक्षाणि, तावकं यशः (च) वैभवमिलत्काष्ठम् (भवति) लोकविरूद्धः मार्गः विजनः एव (भवति) विद्विषां मनः (च) शून्यं (भवति)।

अनुवाद- हे श्रीमान् विग्रहराज देव! आपके प्रयाण उत्सवों में (शत्रु प्रदेशों में आक्रमण के लिए जाते हुए) शत्रुओं की पत्नियों के नेत्रों में जल भर आता है (उनके पतियों का युद्ध भूमि से जीवित लौटना असंभव है।) शत्रुओं के दांतो के मध्य तिनके प्रत्यक्ष (दिखाई देते हैं।) आपका यश वैभव से युक्त दिशाओं वाला हो जाता है। लोकाचार के विपरीत मार्ग निर्जन हो जाता है। शत्रुओं का मन (वैर रहित होकर) शून्य हो जाता है।

(दान्तों में तिनके धारण करने का अर्थ है कि मैं आपकी गऊ हूं, मेरा वध मत कीजिए महाभारत में कहा है-

बालवृद्धौ न हन्तव्यौ न स्त्री न चैव पृष्ठतः।
तृणपूर्णमुखश्चैव न तवास्मीति वादिनम्।। 12/98/39

लीलामन्दिरसोदरेषु भवतु स्वान्तेषु वामभ्रुवां
शत्रूणां तु न विग्रहक्षितिपते न्याय्योऽत्र वासस्तव।
शङ्का वा पुरूषोत्तमस्य भवतो नास्त्येव वारां निधे-
र्निर्मथ्यापहृतश्रियः किमु भवान् क्रोडे न निद्रायितः।।2।।

अन्वय- (हे) लीलामन्दिर विग्रहक्षितिपते! सोदरेषु अत्र वामभ्रुवां स्वान्तेषु तव न्याय्यः वासः भवतु, शत्रूणां तु न (भवतु)। वा पुरोषत्तमस्य भवतः शङ्का अस्ति एव न। किमु भवान् वारां निधेः निर्मथ्य अपहृतश्रियः क्रोडे न निद्रापितः?

अनुवाद- हे क्रीड़ाओं के आगार विग्रहराज! टेढ़े भ्रुवों वाली (सुंदर) स्त्रियों के सजातीय हृदयों में तेरा न्याययुक्त वास हो, शत्रुओं का नहीं अथवा पुरोषत्तम रूप आपको (इसमें) शङ्का है ही नहीं। क्या आप जलों के आगार (समुद्र) से मंथन करके (समुद्रमंथन) निकाली गई लक्ष्मी की गोद में नहीं सुलाए गए हो?

ओं।। आ विन्ध्यादाहिमाद्रेर्व्विरचितविजयंस्तीर्थयात्राप्रसंगा-
दुद्ग्रीवेषु प्रहर्त्ता नृपतिषु विनमत्कन्धरेषु प्रसन्नः।
आर्यावर्तं यथार्थं पुनरपि कृतवान् म्लेच्छविच्छेदनाभि
र्देवः शाकम्भरीन्द्रो जगति विजयते वीसलक्षोणिपालः।।3।।

अन्वय- तीर्थयात्राप्रसंगात् आ विन्ध्यात् आ हिमाद्रेः उद्ग्रीवेषु नृपतिषु प्रहर्त्ता विनमत्कन्धरेषु (च) प्रसन्नः (यः) म्लेच्छ्विच्छेदनाभिः आर्यावर्तं पुनरपि यथार्थं कृतवान्। शाकम्भरीन्द्रः देवः (सः) वीसलक्षोणिपालः जगति विजयते।

अनुवाद- तीर्थ यात्रा के प्रसंग में (ही) विंध्य से लेकर हिमालय तक विजय प्राप्त करने वाले, उठी हुई गर्दन वाले राजाओं पर प्रहार करने वाले, झुके हुए कंधों वालों पर प्रसन्न हुए (जिसने) विदेशियों के संहारों से आर्यावर्त को फिर से (आर्यों का देश) इस अर्थ का अनुसरण करने वाला बनाया। शाकम्भरीपति (सांभर प्रदेश का राजा) देवतुल्य महाराजा वीसलदेव की संसार में विजय हो।

ब्रूते संप्रति चाहमानतिलकः शाकम्भरीभूपतिः
श्रीमद् विग्रहराज एष विजयी सन्तानजानात्मनः।
अस्माभिः करदं व्यधायि हिमवद्विन्ध्यान्तरालं भुवः
शेषस्वीकरणाय माऽस्तु भवतामुद्योगशून्यं मनः।।4।।

अन्वय- चाहमानतिलकः शाकम्भरीभूपतिः विजयी एषः श्रीमद्विग्रहराजः संप्रति आत्मनः सन्तानजान् ब्रूते- भुवः हिंमवद्विन्ध्यान्तरालम् अस्माभिः करदं व्यधायि, शेषस्वीकरणाय भवतां मनः उद्योगशून्यं मा अस्तु।

अनुवाद- चौहान वंश का तिलक सांभर का राजा विजेता यह श्रीमान् विग्रहराज अब अपने वंशजों को कह रहा है- पृथिवी के हिमालय और विंध्य के बीच के (प्रदेशों को) हमारे द्वारा कर देने वाला बना दिया गया है। (पृथ्वी के) शेष भाग को अपने अधीन करने के लिए आप का मन परिश्रम रहित न हो।

सम्वत् श्रीविक्रमादित्ये 1220 वैशाख शुति 15 गुरौ। लिखितमिदं राजाऽऽदेशात् ज्योतिषिकश्रीतिलकराजप्रत्यक्षं गौडान्वय-कायस्थ-माहवपुत्र-श्रीपतिना। अत्र समये महामन्त्री राजपुत्र-श्रीसल्लक्षणपालः।।

अनुवाद- श्री विक्रमादित्य के 1220 में संवत् में वैशाख मास की पूर्णिमाा गुरुवार को राजा के आदेश से ज्योतिषी श्री तिलकराज के समक्ष गौडवंशीय कायस्थ माहव के पुत्र श्रीपति के द्वारा यह (लेख) लिखा गया। इस समय प्रधानमंत्री राजकुमार श्री सल्लक्षणपाल है।

टिप्पणी- ऐतिहासिक दृष्टि में महत्वपूर्ण इस अभिलेख से भारतवर्ष के एक महत्त्वपूर्ण शासक जाति के इतिहास का पता चलता है। अंतिम हिंदुसम्राट् हर्षवर्धन के पश्चात् उत्तर भारत में राज्य करने वाले राजपूत वंश से अभिलेख के चौहान वंशी राजा का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। राजा विग्रहराज चतुर्थ चौहान वंश का प्रसिद्ध राजा था। इसने मुसलमानों से संघर्ष जारी रखा तथा यमुना और सतलुज नदियों का प्रदेश मुसलमानों से छीन लिया।

वस्तुतः महमूद गजनबी अपने निरंतर आक्रमणों से उत्तरपश्चिमी भारत के सभी छोटे बड़े राज्यों को नष्ट भ्रष्ट कर चुका था। उसकी मृत्यु (1030 ई०) के पश्चात् तुर्क लोग इस क्षेत्र में अनेक स्थानों पर बस गए थे। अतः राजा बीसलदेव ने इन म्लेच्छ तुर्कों को क्षेत्र से बाहर निकालकर आर्यावर्त को पुनः सच्चे अर्थों में आर्यावर्त (आर्यों का देश) बना दिया। अपनी विजय कीर्ति को अमर करने के लिए अशोक के स्तम्भ पर यह अभिलेख उत्कीर्ण कराया। अपने वंशजों से विग्रहराज ने यह इच्छा प्रकट की कि पृथ्वी के शेष भाग को म्लेच्छों से मुक्त कराने में निरंतर प्रयास करते रहेगें।

12वीं शताब्दी के मध्य में चौहानों का प्रधान स्थान सांभर था। विग्रहराज ने स्वयं के लिए शाकंभरी- भूपति (शाकंभरी) और शाकम्भरीन्द्र शब्दों का प्रयोग किया है। विग्रहराज वीर, धीर और सफल सैन्य चालक था। वह स्वयं प्रतिभाशाली कवि, ललित

कला का उपासक तथा साहित्यकारों का संरक्षक था। महाकवि सोमदेव ने बीसलदेव के चरितों का चित्रण करने के लिए 'ललित- विग्रहराज की रचना की थी। कहा जाता है कि विग्रहराज ने 'हरकेलि नाटक' की रचना की थी जो पाषाण शिलाओं पर उत्कीर्ण है। चार पद्यों के इस अभिलेख की भाषा सरल व सुबोध है। प्रथम, द्वितीय व चतुर्थ पद्य शार्दूलविक्रीड़ित छंद में निबद्ध है। तृतीय पद्य स्रग्धरा छंद में रचित है। वैदर्भी रीति का प्रयोग किया है।

प्रत्यर्थिदन्तान्तरे, म्लेच्छविच्छेदनाभिः में वृत्यनुप्रास का स्वाभाविक प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। द्वितीय पद्य में 'श्लेष' अलंकार का प्रयोग सुंदर बन पड़ा है। यहां पुरुषोत्तम का 'भगवान विष्णु' और 'उत्तम पुरुष' तथा **वारांनिधेर्निर्मथ्यापहृतश्रियः** का 'समुद्रमंथन करके प्राप्त हुई 'लक्ष्मी' तथा 'शत्रु समूह' का मन्थन करके अपहरण की हुई राज्यश्री' अर्थ ग्रहण किया गया है।

संभवतः अभिलेख के माध्यम से, सामान्य प्रजा को सूचना देने के उद्देश्य से अभिलेखों में प्रायः वैदर्भी रीति तथा सरल व सुगम संस्कृत भाषा का प्रयोग किया गया है।

• • •

वर्ग 'द'
कालक्रमपद्धति (Chronology)

प्रथम अन्विति
(General Introduction to Ancient Indian Chronology)
प्राचीन भारतीय कालक्रम का सामान्य परिचय

'साहित्य समाज का दर्पण होता है' अत: साहित्य तथा अन्य किसी भी प्रकार की रचना के गहन एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन के लिए ग्रंथ विशेष के कालक्रम तथा ग्रंथ के रचनाकार का ज्ञान होना अनिवार्य हो जाता है। साहित्य में परिलक्षित तात्कालिक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक इत्यादि परिस्थितियों का इतिहास ही दृष्टि से ज्ञान प्राप्त करने में कालक्रम निर्धारण परम उपयोगी सिद्ध होता है। परंतु प्राचीन भारत की समृद्ध साहित्य परंपरा का कालक्रम निर्धारण ठोस प्रमाणों के अभाव के कारण सर्वदा एक अनुसंधान का विषय रहा है।

Chronology अर्थात् कालक्रम शब्द को Concise Oxford Dictionary में इस प्रकार स्पष्ट किया है– The word has how come to mean, the science of computing and adjusting time and periods and also of recording and arranging events in order of time and assignation of events to their correct dates.

अत: प्राचीन भारत के कार्यक्रम को निर्धारित करने के लिए वैज्ञानिक और प्रामाणिक सिद्धांत अपेक्षित है।

संस्कृत साहित्य की रचनाओं तथा कवियों का कालनिर्धारण करते समय अनेक समस्याएं उपस्थित होती है। यथा विभिन्न स्थानों पर एक ही नाम के अनेक कवियों का उल्लेख प्राप्त होने पर अभिप्रेत कवि का काल निर्धारण कठिन हो जाता है।

उदाहरणार्थ छठी शताब्दी ईसा पूर्व से लेकर सातवीं शताब्दी तक कालिदास नामक नौ कवियों का उल्लेख वास्तविक कालिदास का काल निर्धारण करने में बाधा उत्पन्न करता है।

प्राचीन काल में आश्रयदाता राजा द्वारा विद्वानों और कवियों को विभिन्न उपाधियों

से विभूषित करने की परंपरा थी। यथा प्राचीन तञ्जौर राज्य में अभिनव जयदेव, अभिनव पतंजलि की उपाधियों से कवियों का अभिनंदन किया जाता था। इसी प्रकार अभिनव बाण व अभिनव कालिदास का भी उल्लेख प्राप्त होता है। कालांतर में अभिनव उपाधि के लुप्त हो जाने पर कवियों के नाम की समानता के कारण मूल कवि का काल निर्धारण एक कठिन कार्य हो जाता है।

न केवल साहित्य अपितु कुछ तिथिविहीन अभिलेख भी कालनिर्धारण की समस्या उपस्थित कर देते हैं।

यथा तिथिविहीन मैहरोली (दिल्ली) स्थित लौह स्तम्भ पर उत्कीर्ण अभिलेख में किसी 'चन्द्र' नामक राजा की वीरता का गान किया गया है-

'प्रस्तुत पद्य में उल्लिखित 'चन्द्र' भारतीय इतिहास का कौन सा चन्द्र है? यह निर्णय करना विद्वानों के लिए अनुसंधान का विषय है। वस्तुतः भारतीय इतिहास में पांच शासकों के नामों के साथ 'चन्द्र' नाम और उपनाम का प्रयोग हुआ है-

1. चन्द्रगुप्त मौर्य (लगभग 321-297 ईसापूर्व)
2. कुषाणवंशीय कनिष्क का उपनाम 'चन्द्र' (खोतान की हस्तलिपि में उल्लिखित) (लगभग 78-102 ईस्वी)
3. चन्द्रवर्मन्, सुसुनिया पर्वत लेख में वर्णित पुष्करणा का राजा
4. चन्द्रगुप्त प्रथम लगभग 319-335 ईस्वी
5. चन्द्रगुप्त द्वितीय लगभग 380-414 ईस्वी

अशोक के तृतीय शिला अभिलेख का प्रारम्भ इस प्रकार है- **देवानंप्रियो पियदसि राजा एवं आह द्बादसाभिसितेन मया इदं आञपितं-----**

(देवानां प्रियः प्रियदर्शी राजा एवम् आह- द्वादश वर्षाभिषिक्तेन मया इदम् आज्ञप्तं----)

अर्थात् 'राज्यअभिषेक के 12 वर्ष पश्चात्' यहां अशोक का राज्य अभिषेक समय स्पष्ट नहीं है।

अपूर्ण अभिलेखों के कारण काल क्रम निर्धारण में बाधा उत्पन्न होती है।

इसी प्रकार विभिन्न अभिलेखों में कृतसंवत्, मालवसंवत्, विक्रम संवत्, शकसंवत् गुप्त संवत्, वलभी संवत् आदि का उल्लेख प्राप्त होता है। इन संवतों का प्रारम्भ 'किसने किया तथा कब हुआ' इस तथ्य की गवेषणा कालक्रम निश्चित करने के लिए आवश्यक है।

प्राचीन भारतीय इतिहास के कालक्रम निर्धारण के विषय में बालगंगाधर तिलक अपनी पुस्तक 'Orion' में लिखते हैं- "The birth of Gautam Buddha, the invasion of Alxendra, The Great, the inscriptions of Ashoka, the accounts of chinese travellars and the overthrow of Buddhism and Jainism by Bhaṭṭa Kumaril and Shaṅkracharya joined with several other less important events have served to fix the chronology of the later periods of the Ancient Indian History."

कालक्रम निर्धारण के प्रसंग में प्राचीन साहित्य के विषय में कहा जा सकता है कि इन ग्रंथों को इतिहास की संरचना के उद्देश्य से नहीं रचा गया था। उनमें प्रमुख रूप से कथाप्रसंग को अपनाया गया जिनमें विभिन्न कालों के तथ्यों का सम्मिश्रण किया गया। इसी कारण इतिहास व कालक्रम के निर्धारण में वे पूर्णतः प्रामाणिक सिद्ध नहीं हुए।

विद्वानों ने प्राचीन भारत के कालक्रम को निर्धारण करने के लिए साहित्यिक व पुरातात्त्विक स्त्रोतों के साथ-साथ, विदेशियों के द्वारा दिए गए भारत विषयक विवरणों तथा ज्योतिष को मुख्य आधार बनाया है।

साहित्यिक स्त्रोत- संस्कृत साहित्य का एकमात्र ग्रंथ कल्हण विरचित राजतरंगिणी (1127-1149 ईस्वी) कश्मीर के इतिहास का अत्यंत प्राचीन काल से लेकर 12वीं शताब्दी तक का प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत करता है। वैय्याकरण पाणिनी का कालनिर्धारण करने के लिए वासुदेव शरण अग्रवाल ने अपनी पुस्तक 'India as known to Paṇini' में अष्टाध्यायी के भौगोलिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा धार्मिक तथ्यों के आधार पर पाणिनि का समय 5वीं शताब्दी ईसा पूर्व निर्धारित किया है।

विदेशी विवरण- विदेशी लेखकों तथा विदेशी यात्रियों द्वारा भारत भ्रमण के समय प्राप्त भारतविषयक ज्ञान कालक्रम निर्धारण में पर्याप्त प्रामाणिक सिद्ध होता है। यूनानी (Greek), रोमन, चीनी, तिब्बती तथा मुगल यात्रियों ने अपने अपने अनुभवों को यथार्थ रूप से प्रकाशित किया। इन यात्रियों में चीनी यात्री फॉ-हियान (Fa-hian 399-414 ईस्वी) उवांग-च्वांग (yuag chawang 629-645 AD) इत्सिगं (Itsing 673-695 ईस्वी) द्वारा किया गया भारत वर्णन प्राचीन भारत के कालक्रम निर्धारण में उपयोगी सिद्ध हुआ। संस्कृत विद्वान् मुगल लेखक एलबेरूनी की (1017-1030 ईस्वी) ताखी-के-हिंद (Tahkik-i-Hind) पुस्तक काल निर्धारण में सहायक हुई। एलबेरूनी ने लिखा है कि 10वीं शताब्दी तक शिव पुराण एक पूर्ण रूप प्राप्त कर चुका था।

ज्योतिष- पाश्चात्य विद्वान् वेबर और जेकोबी ने वेद-काल निर्धारण करने में ज्योतिष को आधार बनाया। भारतीय विद्वानों में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक ने

ज्योतिष गणना के आधार पर वेदों का रचनाकाल 4000–2500 ईसा पूर्व निर्धारित किया।

पुरातात्त्विक स्त्रोत– कालनिर्धारण में साहित्यिक स्त्रोतो के पूर्णतया स्पष्ट न होने पर सौभाग्यवश अभिलेख, सिक्के व मुद्राएं, स्मारक आदि उचित मार्ग दर्शन करते रहे हैं।

मौर्य सम्राट् अशोक ने अपने दूसरे व 13वें शिला अभिलेख में अपने समकालीन पड़ोसी राजाओं के नामों का उल्लेख किया है जिनके शासन काल की तिथियां अन्य प्रमाणों से ज्ञात हैं–

- यवन राजा अन्तियोकस II लगभग 261–248 ईसापूर्व
- अंतकिन (एंटीगोनस) लगभग 277–239 ईसापूर्व
- टेलोमी II (मिस्त्री) लगभग 285–247 ईसापूर्व

अशोक के अभिलेखों में उल्लिखित समकालीन विदेशी राजाओं का समय ज्ञात होने से अशोक का समय इतिहासकारों ने लगभग 270–232 ईसापूर्व निर्धारित किया है।

चतुर्थ व पंचम् शताब्दी ईसापूर्व के पिप्रावा अस्थि कलश अभिलेख (लगभग 487 ईसापूर्व) तथा बदली (बदली) अजमेर अभिलेख (लगभग 443 ईसापूर्व) कालक्रम निर्धारण में सहायक सिद्ध होते हैं।

राजा खारवेल के हाथीगुंफा अभिलेख के पढ़े जाने के पश्चात् यह स्पष्ट हुआ कि खारवेल ने कलिंग में लगभग 185–172 ईसा पूर्व तक शासन किया। अपि च खारवेल के शासन की घटनाओं का प्रस्तुतिकरण कालक्रमानुसार किया गया है। इसी अभिलेख में खारवेल को 'गंधर्ववेदबुधः' कहा है। गंधर्ववेद के सिद्धांत नाट्यवेद में परिलक्षित हैं। इस आधार पर विद्वानों का मत है कि द्वितीय शताब्दी ईसापूर्व के लगभग नाट्यशास्त्र विद्यमान रहा होगा।

संस्कृत साहित्य के कवियों के कालनिर्धारण में अभिलेखों का स्थान महत्वपूर्ण रहा। पुलकेशिन् द्वितीय (556 शक संवत् 634 ईस्वी) के ऐहोल अभिलेख में महाकवि कालिदास और भारवि के नाम का उल्लेख है–

येनायोजि नवेऽश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म।
सः विजयतां रविकीर्तिः कविताश्रितकालिदासभारविकीर्त्तिः।।

अभिलेख में उल्लिखित समय के आधार पर विद्वानों ने भारवि का समय छठी

शताब्दी का प्रारम्भ निश्चित किया है। इसी उल्लेख से महाकवि कालिदास की भी अवर सीमा ज्ञात हो जाती है।

पट्टवाय श्रेणी के मन्दसौर अभिलेख में कवि वत्सभट्टि की काव्य शैली कालिदास विरचित ऋतुसंहार और मेघदूत से प्रभावित परिलक्षित होती है-

चलत्पताकान्यबला-सनाथान्यत्यर्थशुक्लान्यधिकोन्नतानि ।
तडिल्लता-चित्र-सिताब्भ्र-कूट-तुल्योपमानानि गृहाणि यत्र।।

मन्दसौर अभिलेख, पद्य, 10

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः
संगीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम्।
अन्तस्तोयं मणिमयभुवः तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैविशेषैः।।

मेघद्त, उत्तरमेघ, 1

अभिलेख का समय मालवा संवत् 529 (472 ईस्वी) है। इस आधार पर विद्वानों ने महाकवि कालिदास का समय चतुर्थ शताब्दी का पूर्वार्द्ध स्वीकार किया है।

गुप्त संवत् 214 के शर्वनाथ के खोह ताम्रपट्ट अभिलेख में महाभारत को 'शतसाहस्त्री संहिता' कहा है। इससे ज्ञात होता है कि गुप्तसंवत् 214 (533-534 ईस्वी) तक महाभारत का वर्तमान कलेवर बन चुका था।

कभी-कभी विदेशी अभिलेख भी कालनिर्धारण में उपयोगी सिद्ध हुए हैं। बोगाज-काई (एशिया माइनर) अभिलेख की खोज करने वाले पुरातत्त्ववेत्ता हूगो विंटीलर (Hugo wintiller) ने 1907 ईस्वी में वैदिक काल निर्णय में इस अभिलेख का उल्लेख किया।

अभिलेखों की तरह सिक्के भी कालक्रम निर्धारण में मार्गदर्शन करते हैं। स्वर्ण-रजत-ताम्र निर्मित सिक्कों पर उत्कीर्ण चिन्ह या प्रतीक तथा तिथियुक्त सिक्के इतिहास के काल विशेष की जानकारी देते हैं। धातु की शुद्धता और अशुद्धता उस कालविशेष की आर्थिक स्थिति को भी प्रकट करती है। यथा समुद्रगुप्त द्वारा जारी किए गए सिक्कों से उसकी समृद्धि का ज्ञान होता है।

डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल ने अष्टाध्यायी में प्राप्त मुद्राविषयक उद्धरणों के आधार पर पाणिनी को कौटिल्य से पूर्ववर्ती सिद्ध किया है। उनके मतानुसार अष्टाध्यायी में प्राप्त होने वाले सिक्कों का नामोल्लेख (सुवर्ण, शाण, शतमान) अर्थशास्त्र में नहीं मिलता।

मेहरौली लौह स्तम्भ अभिलेख में उत्कीर्ण 'चन्द्र' नामक राजा का निर्धारण विद्वानों ने लिपि के आधार पर किया है। चन्द्र नाम के पांच राजाओं में से चन्द्रगुप्त II की 'चन्द्र' नाम से साम्यता स्थापित की गई है। अभिलेख की लिपि गुप्तकालीन ब्राह्मी तथा भाषा संस्कृत है। निम्न तालिका ब्राह्मी लिपि के विभिन्न रूपों को स्पष्ट करती है। (देखें पृष्ठ 53)

इतिहास में वर्णित अनेक घटनाओं का कालक्रम निर्धारित करने में संवतों का प्रयोग भी महत्वपूर्ण है। विद्वानों ने प्रामाणिक गणनाओं के आधार पर यह निश्चित किया है कि विक्रम संवत् की गणना 57 ईसापूर्व, शक संवत् की गणना 78 ईस्वी, गुप्त संवत् की गणना 319 ईस्वी तथा हर्ष संवत् की गणना 606 ईस्वी को प्रारम्भ हुई थी।

• • •

द्वितीय अन्विति
System of Dating the Inscriptions (Chronograms)
अभिलेखों में तिथिअङ्कन पद्धति

ग्रीक भाषा के शब्द 'chronogram' को विद्वानों ने इस प्रकार परिभाषित किया है- A chronogram is a sentence or inscription in which specific letters, interpreted as numerals stand for a particular date we rearranged.

अभिलेखों में प्राप्त होने वाली तिथि अङ्कन पद्धति दो प्रकार से प्राप्त होती है-

i. शासन वर्ष या राज्य वर्ष

ii. नियमित संवत् का प्रयोग

i. **शासन वर्ष या राज्य वर्ष**- प्राचीन भारतीय अभिलेखों में गणना का प्रारम्भ राजा के शासन वर्ष से किया गया है। इन अभिलेखों में किसी भी संवत् का प्रयोग दृष्टिगोचर नहीं होता। अशोक के अभिलेखों में शासन वर्ष का उल्लेख इस प्रकार किया गया है-

- **द्बादसवासाभिसितेन मया**-(तृतीय शिला अभिलेख) द्वादशवर्षाभिषिक्तेन मया
- **दसवसाभिसितो संतो**-(अष्टम शिला अभिलेख) दशवर्षाभिसिक्तः सन्
- **षडुवीसतिवस अभिसितेन मे इमानि जातानि अवधियानि कटानि**-(पञ्चम स्तम्भ अभिलेख)

षड्विंशतिवर्षाभिषिक्तेन मया इमानि जातानि अवध्यानि कृतानि

अशोक ने पंचम स्तम्भ अभिलेख में पूर्णिमा, तिष्यनक्षत्रयुक्त पूर्णिमा, चतुर्दशी, प्रतिपदा, अमावस्या आदि तिथियों का उल्लेख किया है।

खारवेल के हाथी गुंफा अभिलेख (लगभग प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व का अंत) में

प्रथम शासन वर्ष का उल्लेख है- **अभिसितमतो पघमे वसे**- राज्याभिषिक्ति (सम्राट्) के प्रथम शासन वर्ष में।

शासन वर्ष या राज्य वर्ष से अङ्कित अभिलेखों में किसी भी प्रचलित कालगणना या संवत् का उल्लेख न होने से कालक्रम निर्धारण शोध का विषय बन जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि प्रारंभिक अभिलेखों में तिथि लिखने का प्रचलन नहीं था। इसका कारण संभवतः यह रहा होगा कि प्राचीन भारत में किसी जनप्रिय संवत् का अस्तित्व नहीं था।

संवत् द्वारा तिथि-अङ्कन- अभिलेखों में शनैः शनैः संवत्, तिथि, दिवस, ऋतु, पक्ष आदि के उल्लेख का प्रचलन प्रारम्भ हो गया। सर्वप्रथम उत्तर-पश्चिमी भारत के विदेशी शासकों के सिक्कों व अभिलेखों में नियमित संवत् का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। इतिहासकारों ने अभिलेखीय तथ्यों के आधार पर यह मत प्रस्तुत किया है कि प्राचीन शकपार्थी संवत् तथा कनिष्क संवत् कालांतर में क्रमशः विक्रम संवत् तथा शक संवत् के नाम से प्रसिद्ध हुए।

शकपार्थी कालगणना (**विक्रमसंवत्**) का उल्लेख शोडास कालीन मथुरा अभिलेख (वर्ष 72) तथा शककालीन खरोष्ठी लिपि में लिखे गए तक्षशिला के ताम्रपट्ट अभिलेख (वर्ष 78) में प्राप्त होता है। संभवतः यह कालगणना पार्थी शासक द्वारा राजाधिराज की उपाधि ग्रहण करने के समय में प्रारम्भ हुई। इसी कालगणना को शकपार्थी राजाओं के उत्तराधिकारियों ने एक नए संवत् का रूप दे दिया। विद्वानों ने इसे विक्रम संवत् माना है। विक्रम संवत् का प्रारम्भ 57 ईसा पूर्व माना जाता हैं। विक्रम संवत् का प्राचीनतम नाम कृत संवत् था। इसी कृत संवत् को मालव संवत् तथा बाद में विक्रम संवत् कहा जाने लगा। पुरातत्त्वविदों व इतिहासकारों ने कृत-मालव-विक्रम संवत् को एक ही नियमित गणना स्वीकार किया। अभिलेखों में इन तीनों नामों से संवत् का उल्लेख प्राप्त होता है। राजपूताना तथा मध्य भारत के अभिलेखों में कृत संवत् का प्रयोग प्राप्त होता है-

-**कृतयोर्द्वयोर्वर्ष- शतयोर्द्वय् अशीतयोः 200 80 2 चैत्र पूर्णमास्याम्**- नाँदसा यूप अभिलेख (225 ईस्वी) कृत् संवत् 282 (विक्रमसंवत्)

कालांतर में शक शासकों ने सिंधु, सुराष्ट्र और अवंति के भूभाग पर अधिकार कर लिया तथा कृत संवत् की गणना में मालव संवत् का नाम जोड़ दिया। पट्टवायश्रेणी के मन्दसौर अभिलेख में मालव संवत् 529 अंकित है। मालव संवत् का उल्लेख मन्दसौर से प्राप्त हुए यशोधर्मन् (विष्णुवर्द्धन्) के समय के शिलालेख में इस प्रकार किया गया है-

पञ्चसु शतेषु शरदां यातेष्वेकान्नवतिसहितेषु।
मालवगणस्थितिवशात्कालज्ञानाय लिखितेषु।।

अर्थात् मालवगणजाति की स्थिति के वश से कालज्ञान के लिए लिखे हुए 589 वर्षों के बीतने पर–मालवसंवत् (विक्रमसंवत्) 589 (532 ईस्वी)

नवम् शताब्दी के पश्चात्वर्ती अभिलेखों में कृत संवत् तथा मालव संवत् के स्थान पर नियमित गणना के लिए विक्रम संवत् का प्रयोग ही दृष्टिगोचर होता है। बीसल देव के दिल्ली–टेपरा स्तम्भ अभिलेख में विक्रम संवत् के साथ मास, पक्ष व तिथि का उल्लेख भी है–

ॐ संवत् 1220 वैशाख शुति 15 [।।] (1163 ईस्वी) (शुक्ल–तिथि)

शकसंवत्– शकपार्थी गणना की स्थापना (57 ईसा पूर्व) के पश्चात् विदेशी मूल के शासक कुषाणवंशी राजा के द्वारा अपने शासनकाल के वर्षों की गणना के साथ एक कालगणना प्रारम्भ की गई। उस काल गणना ने एक संवत् का रूप ले लिया जो शक संवत् के नाम से प्रचलित हुई। शक संवत् से युक्त प्राचीनतम अभिलेख सारनाथ बौद्ध प्रतिमा अभिलेख है जो कि कनिष्क कालीन है– महाराज कणिष्कस्य सं 3 हे 3 दि 20 (संवत्सर तीन, हेमंत मास, के तीसरे दिन 22वीं, तिथि।

शकसंवत् का प्रारम्भ विद्वानों ने 78 ईस्वी माना है। रुद्रदामन् के गिरनार अभिलेख में भी शक संवत् की ही गणना मानी गई है– **महाक्षत्रपस्य गुरुभिरभ्यस्तनाम्नो रुद्रदाम्नो वर्षे द्वि– सप्ततितमे 70, 2 मार्गशीर्ष बहुल–प्रतिपदि**– (72वां वर्ष, मार्गशीर्ष मास, कृष्णपक्ष, प्रतिपदा)

इस अभिलेख में शक संवत् 72 (150 ईस्वी) उत्कीर्ण है। 1955 ईस्वी में भारत सरकार ने ईस्वी संवत् के साथ शक संवत् का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया।

गुप्त संवत्– गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त प्रथम द्वारा प्रारम्भ किया गया गुप्त संवत् अभिलेखों में गुप्त वर्ष और गुप्त काल के नाम से भी प्राप्त होता है। गुप्तवंश के पश्चात् काठियावाड़ में वंलभी के राज्य का उदय हुआ। गुप्त संवत् को ही वंलभी संवत् के नाम से जाना जाने लगा। गुप्त संवत् की काल गणना 319 ईस्वी से प्रारम्भ हुई। चन्द्रगुप्त (द्वितीय) कालीन सांची स्तूप प्राचीन अभिलेख में गुप्त संवत् 93 उत्कीर्ण है– सं० 90, 3 भाद्रपद दि० 4 (412 ईस्वी)

बुधगुप्तकालीन सारनाथ बुद्ध प्रतिमा अभिलेख में गुप्त संवत् 157 (476 ईस्वी) उत्कीर्ण है– **गुप्तानां समतिक्रान्ते सप्तपंचाशदुत्तरे शते समानां बुधगुप्ते प्रशासति।। वैशाखमाससप्तम्यां मूले श्यामगते मया कारिता**– (गुत्तवंशी राजाओं के संवत्

157 वर्ष बीतने पर, जब पृथ्वी पर बुधगुप्त शासन कर रहे है, वैशाख मास के कृष्णपक्ष की सप्तमी तिथि को–)

गुप्तोत्तरकालीन महाराज संक्षोभ के खोह ताम्रपट्ट में गुप्त संवत् 209 (528 ईस्वी) का उल्लेख है– **स्वस्ति नवोत्तरेऽब्दशतद्वये गुप्तनृपराज्यभुक्तौ------**

गुप्तवलभी के नाम से इस संवत् का उल्लेख द्रोणसिंह (गुप्त संवत् 183 (502 ईस्वी) तथा धरसेन द्वितीय के ताम्रपट्ट गुप्त संवत् 252 (571 ईस्वी) में किया गया है।

गुप्त संवत् नेपाल से काठियावाड़ तक चलता रहा। इस संवत् से युक्त अंतिम अभिलेख वलभी (गुप्त) संवत् 945 (1264 ईस्वी) का प्राप्त हुआ है। विद्वानों का मानना है कि इसके पश्चात् गुप्त संवत् का प्रयोग समाप्तप्राय हो गया।

हर्षसंवत्– थानेश्वर के राजा हर्ष (श्री हर्ष, हर्षवर्द्धन, शीलादित्य) के राजसिंहासन पर बैठने के समय से हर्ष संवत् का आरंभ माना जाता है। राजा हर्ष के किसी लेख में संवत् के साथ हर्ष नाम प्राप्त नहीं होता। राजा हर्ष के बांसखेड़ा से प्राप्त दानपत्र में संवत् 20, 2 (=22) (627 ईस्वी) कार्तिक बदी, और मधुबन से प्राप्त दान पत्र में संवत् 20. 5 (=25) मार्गशीर्ष बदि 6 (630 ईस्वी) ही लिखा हैं। हर्ष संवत् का प्रारम्भ विद्वानों ने 606 ईस्वी के लगभग माना है।

प्रस्तुत संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि प्रायः संवत् का नामकरण संवत् (कालगणना) के प्रारम्भ होने के समय नहीं होता था। अपितु जब कोई संवत् लोकप्रिय हो जाता था, तब कोई विशिष्ट नाम उसके साथ जुड़ जाता था। वह संवत् विशेष अन्य काल गणनाओं से पृथक् प्रतिष्ठित हो जाता था।

तिथिअङ्कन परंपरा के अंतर्गत भारत में गांगेय संवत् (570 ईस्वी), नेवार संवत् (878-79 ईस्वी), कलचुरी या चेदि संवत् (1118-1119 ईस्वी) आदि अनेक संवतों का सीमित समय के लिए सीमित क्षेत्रों में प्रयोग उपलब्ध होता है। विक्रम संवत् तथा शक संवत् का प्रयोग भारत में नियमित रूप से हो रहा है।

• • •

तृतीय अन्विति

अभिलेखों में प्रयुक्त प्रमुख संवत्

विक्रम-संवत्

कालगणना के लिए भारत में विक्रम संवत्, शक संवत् तथा ईस्वी सन् का प्रयोग प्रचलित है। सर्वाधिक प्राचीन विक्रम संवत् का प्रारम्भ 57 ईसा पूर्व माना जाता है। ईस्वी सन् में 57 संख्या जोड़ने से विक्रम संवत् का वर्ष जाना (2017 ई+ 57 ईसापूर्व =2074 विक्रम संवत्) जा सकता है।

ऐसा माना जाता है कि विदेशी मूल की जातियों के शासकों शक-पार्थी तथा कुषाणों को ही नियमित संवत् को प्रारम्भ करने का श्रेय प्राप्त है। वस्तुतः उत्तर-पश्चिमी भारत के विदेशी शासकों के सिक्कों में तथा अभिलेखों में एक निरंतर कालक्रम का उल्लेख प्राप्त होता है। विद्वानों के मतानुसार जब किसी शासकवंश को प्रारम्भ करने वाले राजा द्वारा, अपने सिंहासनारूढ़ होने के समय प्रारम्भ की गई कालगणना, उसके वंशज राजाओं द्वारा भी निरंतर प्रयोग में लाई गई हो, तो समय बीतने पर उसी शासन-काल गणना (regnal reckoning) ने नियमित संवत् का रूप ले लिया।

प्राचीन शक पार्थी संवत् तथा विक्रम संवत् के एक ही संवत् होने की पुष्टि पार्थी शासक गोण्डोफर्नीस के तख्ते-बाही अभिलेख पर अंकित वर्ष 103 से भी की गई है। खरोष्ठी लिपि तथा प्राकृत भाषा में लिखा गया यह अभिलेख पाकिस्तान के पेशावर जिले में यूसुफज़ई क्षेत्र के मर्दान नगर के लगभग 12 किलोमीटर के पश्चिम में तख्ते बाही नामक स्थान पर प्राप्त हुआ।

यह संवत् सर्वप्रथम बोनोनस के शक सामंतों द्वारा सिन्ध एवं सीमावर्ती क्षेत्रों में प्रचलित किया गया। मालव इस संवत् को अपने साथ पंजाब से राजस्थान और मध्य भारत में ले आए। प्रारम्भ में मालवा के अधीनस्थ तथा संभवतः उसी वंश परंपरा के मौखरि वंश के शासक इस संवत् को अपने आदि निवास राजस्थान से पूर्व की ओर उत्तर प्रदेश तथा बिहार तक ले गए। इस संवत् के प्रचार प्रसार में उज्जयिनी की ज्योतिष शाखा का भी विशेष योगदान रहा।

विक्रमसंवत् भिन्न भिन्न कालों में भिन्न-भिन्न नामों से अभिहित किया जाता रहा। ये नाम हैं- कृतसंवत्, मालवसंवत्, विक्रम संवत्।

कृतसंवत्- राजपूताना तथा मध्य भारत के अभिलेखों में विक्रम संवत् गणना कृत संवत् के नाम से प्राप्त होती है। यथा इस का प्राचीनतम नाम कृत शब्द मौखरियों के बडवा अभिलेख (सं० 295) विष्णुवर्धन् के विजयगढ़ अभिलेख (सं० 428) नरवर्मन् के मन्दसौर अभिलेख (सं० 461) में प्राप्त होता है।

यहां प्रयुक्त 'कृत' शब्द का 'क्रीत' अर्थात् खरीदना के अर्थ की पुष्टि करते हुए कहा गया है कि शक पार्थियन् क्रूर राजाओं ने प्रजाओं को एक तरह से खरीद लिया था, परंतु यह तर्क मान्य नहीं है। पूर्ववर्ती काल में संवत् के साथ 'विक्रम' नाम के अभाव का कारण यह माना गया है कि वस्तुतः विक्रमादित्य गणप्रमुख ही थे, निरंकुश एक-तांत्रिक राजा नहीं थे। यद्यपि मालव संवत् की स्थापना में उनका हाथ था परंतु उसकी स्थापना का संपूर्ण श्रेय वे नहीं ले सकते थे। यह संवत् शकों पर मालवों की विजय के उपलक्ष्य में स्थापित किया गया था। शकों के निष्कासन के पश्चात सुख, वैभव और समृद्धि के काल को कृतयुग कहकर कृत संवत् की सार्थकता सिद्ध की गई है।

मालवसंवत्- इतिहासकारों के अनुसार भारत विदेशी आक्रमणों से मुक्त होकर 135 वर्ष (57 ईसा पूर्व) से लेकर 78 ईस्वी तक शांति व समृद्धि भोगता रहा। इस काल के पश्चात् शकों ने पुनः आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। देश में किसी योग्य नेतृत्व के अभाव में संपूर्ण सिंधु, सौराष्ट्र तथा अवंति पर अधिकार कर लिया था। मालव शकों से संघर्ष करते रहे परंतु उनकी शक्ति व यश विच्छिन्न हो चुके थे। कृतयुग की स्थिति परिवर्तित हो जाने के कारण कृत संवत् का नाम मालव संवत् रखकर अपनी नीव दृढ़ करने का प्रयत्न किया। ईस्वी सन् की चतुर्थ-पंचम् शताब्दी तक मालवशक्ति गुप्त-साम्राज्य में विलीन हो गई। गुप्त साम्राज्य की भुजाएं मालवा, राजपूताना तथा मध्य भारत तक फैल गई। गुप्त भी मालव संवत् का प्रयोग करते थे।

छठी शताब्दी के कई अभिलेखों में मालव संवत् का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। निम्न अभिलेखों में कृत संवत् का सम्बन्ध मालवगण के साथ स्थापित किया गया है-

मन्दसौर से मिले नरवर्मन् के समय के लेख में

- **श्रीर्मालवगणाम्नाते प्रशस्ते कृतसंज्ञिते। एकषष्ट्यधिके प्राप्ते समाशतचतुष्ट्ये।। प्रावृक्का(ट्का)ले शुभे प्राप्ते'** अर्थात् मालवगण के प्रचलित किए हुए प्रशस्त कृत संज्ञा वाले 461 वें वर्ष के लगने पर वर्षा ऋतु में'
- राजपूताना संग्रहालय में रखे हुए नगरी (मध्यमिका, उदयपुर राज्य में) के

शिलालेख में–'**कृतेषु चतुर्षु वर्षशतेष्वेकाशीत्युत्तरेष्वस्यां मालवपूर्वायां 400 80 1 कार्त्तिकशुक्लपञ्चम्याम्** अर्थात् कृत नामक 481 वें वर्ष (संवत्) में इस मालव पूर्वा कार्त्तिक शुक्ला पंचमी के दिन'

गुप्तकाल में उज्जयिनी में रहने वाली मालवजाति पर्याप्त सुदृढ़ जाति थी। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में जब सिकंदर ने भारत पर आक्रमण किया तब मालव कबीला पंजाब में रावी तट पर रहता था जो कि ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी तथा प्रथम ईस्वी तक शक-पार्थियन् के अधीन था। संभवतः विदेशी दबाब के कारण मालव लोग राजस्थान की ओर चल दिए। जहां उनका अस्तित्त्व ऋषभदत्त (119-123 ईस्वी लगभग) तथा पुराने जयपुर राज्य में नागर स्थान पर हजारों सिक्कों से प्रकाशित होता है जिन पर 'मालवानां जयः' उत्कीर्ण है। इसके पश्चात् मालव पुराने अवंती और आकरा नामक जनपदों में बस गए होंगे जो कि सप्तम् शताब्दी तक मालव नाम से जाने गए। विद्वानों ने इस आधार पर माना है कि मालव जाति कृत अथवा शक-पार्थियन् संवत् को अपने मौलिक स्थान पंजाब से राजस्थान व मालवा में ले आई थी।

विक्रम संवत्– ईसा की चतुर्थ शताब्दी में गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय (जिनकी उपाधि विक्रमादित्य थी) ने मालवा तथा काठियावाड़ के शक, क्षत्रप शासकों को परास्त किया तथा वह भाग गुप्त साम्राज्य में मिला लिया। इससे पूर्व भी शकों को परास्त कर यह संवत् (गणना) आरंभ हुआ था। पुनः उन्हीं शकों को गुप्त सम्राट् विक्रमादित्य ने पराजित किया। संभवतः इस विजय के स्मारक में प्राचीन (कृत, मालवा) संवत् का नाम बदल कर विक्रम संवत् कर दिया। शकारि चन्द्रगुप्त द्वितीय की विजय का उल्लेख भिलसा के समीप उदयगिरी के गुहालेख में पाया जाता है। इसमें उल्लेख है कि राजा के साथ सेनापति वीरसेन भी मालवा में आया था। विद्वानों के मतानुसार शक-विजय के कारण ही चन्द्रगुप्त द्वितीय ने सर्वप्रथम चांदी का सिक्का चलाया जो सर्वथा क्षत्रप सिक्कों का अनुकरण था। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि शकों की अंतिम पराजय चन्द्रगुप्त (द्वितीय) विक्रमादित्य के हाथों हुई थी। इस कारण (कृत, मालव) संवत् के साथ विक्रम नाम जोड़ना स्वाभाविक था। मालवसंवत् विक्रमसंवत् के नाम से पुकारा जाने लगा। मालवा पर चतुर्थ शताब्दी में विजय प्राप्त कर लेने पर भी विक्रम का नाम संवत् के साथ नवम् शताब्दी के पश्चात् ही पाया जाता है–

- **श्रीविक्रमादित्योत्पादित- संवत्सर- 1005, बोधगया अभिलेख**
- **विक्रमकाले गते-973, बीजापुर अभिलेख**

उत्तरी भारत में विक्रमी संवत् का प्रारम्भ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से तथा दक्षिण भारत में कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा से माना जाता है।

शक-संवत्

विदेशी मूल के शासक कुषाणवंशी राजा के द्वारा अपने शासन काल की गणना के साथ एक कालगणना का प्रारम्भ किया गया। तत्पश्चात् उनके उत्तराधिकारियों के द्वारा इस काल गणना का निरंतर प्रयोग होने के कारण यह एक नियमित संवत् माना जाने लगा।

इस संवत् का प्राचीनतम प्राप्त अभिलेख कनिष्ककालीन सारनाथ बुद्ध प्रतिमा अभिलेख माना गया है–

महाराजस्य कनिष्कस्य सं० 3 हे 3 दि 20 2

अर्थात् महाराजा कनिष्क के संवत्सर तीन, हेमंत मास का तीसरा दिन 22 वीं तिथि। यह अभिलेख सम्राट् कनिष्क के शासनकाल के तीसरे वर्ष में ई० 78–ई० 102 के मध्य में लिखा गया।

सर्वप्रथम वराहमिहिर की पंचसिद्धांतिका में शक संवत् 427 (505 ईस्वी) का उल्लेख प्राप्त होता है। आधुनिक अभिलेखीय प्रमाण इस संवत् का सम्बन्ध बादामी के चालुक्यों के साथ स्थापित करते हैं। षष्ठ व सप्तम् शताब्दी के चालुक्य अभिलेखों में **'शकवर्ष' 'शकनृपराज्य अभिषेक-संवत्सर'** का उल्लेख है। पश्चिमी भारत के शकक्षत्रपों 41 से लेकर 310 तक निरंतर जिस काल गणना का प्रयोग किया उसे विद्वानों ने शक गणना ही माना है। शक शासकों ने इस गणना को शककाल, शकाब्द, शक-संवत् नाम दिया।

जैन ग्रंथ प्रभावकचरित में उल्लेख है कि शक लोगों ने अपना संवत् चलाया था। शकों नें विक्रम के उत्तराधिकारी को विक्रमादित्य के 135 वें वर्ष में मार डाला, उसी काल से शक गणना का प्रारम्भ मानते हैं। विक्रम संवत् का स्थापना काल 57 ईसा पूर्व है। इससे 135 वर्ष घटाने से शककाल 78 ईस्वी सिद्ध हो जाता है।

पांचवीं शताब्दी से 12वीं शताब्दी तक के अभिलेखों में शककाल (संवत्) का प्रयोग प्राप्त होता है। पश्चिमी भारत के क्षहरात (महाराष्ट्र) शक नहपान के लेख में शक-काल प्रयुक्त है। क्षत्रपों के सिक्कों का भी इसी संवत् से सम्बन्ध है। रुद्रदामन् के गिरनार अभिलेख में शक संवत् 72 उत्कीर्ण है। (ईस्वी 150)

शक संवत् की स्थापना के 500 वर्ष बाद भी अभिलेख में **'शकनृपकाल'** तथा **'शकाब्द'** का उल्लेख मिलता है जो यह सिद्ध करता है कि शक द्वारा काल स्थापना की परंपरा लोगों को ज्ञात थी। चालुक्य नरेश पुलकेशिन् द्वितीय के ऐहोल अभिलेख में इस प्रकार की सूचना प्राप्त होती है–

पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च।
समासु-समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्।।

अर्थात् इस कलि के युग के शक राजाओं के 556 वर्ष (634 ईस्वी) वर्ष व्यतीत हो चुके हैं।

कनिष्क व शकसंवत् के स्वरूपों की दृढ़ता तिथियुक्त कुषाण प्रमाणों के आधार पर की जा सकती है-

		शकसंवत्
कनिष्क प्रथम	लगभग 78-102 ईस्वी	1-24
वाशिष्क	लगभग 102-106 ईस्वी	24-28
हुपिष्क	लगभग 106-138 ईस्वी	28-60
कनिष्क द्वितीय	लगभग 119 ईस्वी	41
वासुदेव	लगभग 152-176 ईस्वी	74-98
कनिष्क तृतीय	लगभग 210 ईस्वी	132

इससे सिद्ध होता है कि कनिष्क प्रथम के शक्तिशाली राज्यकाल में पश्चिमी भारत के शक क्षत्रप पूर्णरूपेण कुषाणों के आश्रित थे। परंतु कनिष्क प्रथम की मृत्यु के पश्चात् वे अर्धस्वतंत्र हो गए। ईसा की द्वितीय शताब्दी के मध्य के लगभग जब कुषाणों की केंद्रीय सत्ता नाशोन्मुख हो रही थी तब रुद्रदामन् एक स्वतंत्र शासक बना तथा उसके उत्तराधिकारी शक संवत् का प्रयोग 388 वर्ष तक करते रहे।

शकसंवत् 500 (578 ईस्वी)से शकसंवत् 1262 (1340 ईस्वी) के शिलालेखों में तथा दान पत्रों में 'शक' का प्रयोग इस प्रकार प्राप्त होता है-

शकनृपतिराज्यअभिषेकसंवत्सर

शकनृपतिसंवत्सर

शकसंवत्

शक

शाक

इससे स्पष्ट है कि ईस्वी संवत् 500 के आस-पास से शकसंवत् 1262 तक यह संवत् किसी शक राजा के अभिषेक से चला हुआ था। उस समय तक शालिवाहन का नाम इसके साथ नहीं जुड़ा था।

भारत के दक्षिणी व पश्चिमी प्रदेशों में शक-संवत् को शालिवाहन, सातवाहन

कहा जाने लगा। संभवतः सातवाहन (शालिवाहन) नृप गौतमीपुत्र शातकर्णी के स्मरण पर ऐसा किया गया होगा।

शालिवाहन-संवत् का प्रयोग सर्वप्रथम ईस्वी सन् की 14वीं शताब्दी के प्रारम्भ के आस-पास, हरिहर गांव से प्राप्त हुए विजय नगर के यादव राजा बुक्कराय प्रथम के शक संवत् 1276 (1354 ईस्वी) के दान पत्र में प्राप्त होता है- **'नृपशालिवाहनशक 1276'**

इसके पश्चात् शालिवाहन लिखने का प्रचार बढ़ता गया। **शालिवाहनशक, शालिवाहन शकवर्ष, शालिवाहनशकाशब्द** आदि के रूप में शक-संवत् का उल्लेख प्राप्त होता है।

दक्षिणी-पश्चिमी दक्कन के कन्नड़ बोलने वाले प्रदेशों के उत्तराधिकारी परिवारों द्वारा शकसंवत् का प्रयोग किया जाता था। चालुक्यों के समय में स्पष्ट रूप से इस संवत् का प्रयोग राजाओं द्वारा किया गया। सातवीं, आठवीं शताब्दी के भारत, चीन और इंडोनेशिया के अभिलेखों पर शक-संवत् अंकित है। बंगाल में शक-संवत् की प्रसिद्धि 12वीं शताब्दी में हुई। बंगाल व उत्तरी बिहार से आसाम और नेपाल में फैला। मध्य प्रदेश तथा गुजरात के कुछ अभिलेखों में शक संवत् का प्रयोग प्राप्त होता है।

भारत सरकार की प्रशासकीय गणना में ईस्वी संवत् प्रयुक्त होता रहा। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् एक नवंबर 1952 ईस्वी में भारत के विभिन्न भागों में प्रयुक्त विभिन्न तिथियों की परीक्षा के लिए एक संस्था की नियुक्ति की गई तथा संपूर्ण देश में शुद्ध व एक समान तिथि तैयार करने के प्रस्ताव को रखा गया। इस घोषणा के परिणामस्वरूप 1955 ईस्वी में ऐसा विज्ञान तैयार किया गया जिसके अनुसार सरकार ने ईस्वी संवत् के साथ शक संवत् का प्रयोग प्रारम्भ कर दिया। मार्च 22, 1957 ईस्वी से एक परिष्कृत कलैण्डर निकाला। इस कलैण्डर के अनुसार शक वर्ष चैत्र प्रतिपदा से प्रारम्भ होता है तथा ईसाई कलैण्डर के समान 12 महीनों के नामों की संख्या को निश्चित कर दिया। इस प्रकार चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़ श्रावण व भाद्रपद में 31 दिन तथा आश्विन्, कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष, माघ, फाल्गुन में 30 दिन होते हैं। लीप वर्ष में फाल्गुन में 31 दिन होते हैं। इस परिष्कृत व वैज्ञानिक कलैण्डर के अनुसार भारत सरकार का शकसंवत् 1881 में (1959 ईस्वी) चैत्र प्रतिपदा में प्रारम्भ हुआ और निरन्तर प्रयोग में आ रहा है।

गुप्त-संवत्

ईसा की चौथी शताब्दी से **छठी शताब्दी** तक की गुप्त इतिहास की घटनाओं को कालक्रमानुसार निबद्ध करने में विद्वानों को कठिनाई का सामना करना पड़ा। परंतु गुप्त

अभिलेखों में गुप्तकाल व गुप्त वंश की राज्य परंपरा का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होने के पश्चात् कालनिर्णय में सरलता हो गई। समुद्रगुप्त के इलाहाबाद स्तम्भ अभिलेख में समुद्रगुप्त की वंशावली का वर्णन किया गया है-

महाराजश्रीगुप्तप्रपौत्रस्य महाराज-श्री-घटोत्कचपौत्रस्य महाराजाधिराज-श्री चन्द्रगुप्तपुत्रस्य लिच्छविदौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिराज-श्रीसमुद्रगुप्तस्य अर्थात् महाराज श्री गुप्त का प्रपौत्र, महाराज श्री घटोत्कच का पौत्र, महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त पुत्र, महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्त....।

गुप्तसंवत् के प्रवर्तक राजा के विषय में विद्वानों ने पर्याप्त तर्क प्रस्तुत किए हैं। गुप्त वंश के आदि दो नरेश श्री गुप्त और घटोत्कच का नाम इतिहास में प्रसिद्ध नहीं है। वे साधारण सामन्त के रूप में शासन करते थे। गुप्तवंश के तृतीय राजा चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने बाहुबल से राज्य का विस्तार किया तथा इसी राजा ने सर्वप्रथम महाराजाधिराज की पदवी धारण की। सिंहासनारूढ़ होने पर अपने वंश के नाम के साथ गुप्त संवत् की स्थापना की। इसकी पुष्टि गुप्त लेखों में उल्लिखित तिथियों से भी होती है। चन्द्रगुप्त प्रथम के पौत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) के अभिलेखों में 82, 83 तिथियां उल्लिखित है। इस आधार पर विद्वानों का अनुमान है कि चन्द्रगुप्त प्रथम ही प्रतापी शासक था। उसी के राज्यारोहण पर गुप्त संवत् का प्रारम्भ हुआ।

इतिहासकारों ने गुप्त संवत् का प्रारम्भ 9 मार्च से 319 ईस्वी माना है। चन्द्रगुप्त द्वितीय कालीन मथुरा स्तम्भ अभिलेख में गुप्त संवत् 61 उत्कीर्ण है। ज्योतिष गणना के अनुसार गुप्त संवत् 61 में अधिक मास था। 380 ईस्वी में आषाढ़ मास का अधिक मास था। अतः गुप्त संवत् 61, 380 ईस्वी निश्चित किया गया। तदनुसार गुप्त संवत् का प्रारम्भ (380-61) 319 ईस्वी माना जाता है।

गुप्त राजाओं के निम्न अभिलेखों में गुप्त संवत् का प्रयोग किया गया है-

चन्द्रगुप्त द्वितीय (विक्रमादित्य) मथुरा अभिलेख- गुप्त संवत् 61, चन्द्रगुप्त द्वितीय कालीन सांची स्तूप अभिलेख-गुप्त संवत् 93, कुमारगुप्त प्रथम कालीन दामोदर ताम्रपट्ट अभिलेख-गुप्त संवत् 124, स्कन्दगुप्त का गिरनार अभिलेख- गुप्तसंवत् 136,137,138, बुधगुप्त एरण स्तम्भ अभिलेख- गुप्त संवत् 165.

इसके अतिरिक्त गुप्तकालीन उदयगिरि गुहा अभिलेख (106 गुप्त संवत्) स्कन्दगुप्त का इंदौर ताम्रपट्ट (गुप्त संवत् 146) में गुप्त संवत् का प्रयोग है।

गुप्त सम्राटें के सामंत परिव्राजक महाराजाओं के अभिलेखों में तिथि का उल्लेख

'गुप्तनृपराज्यभुक्तौ' के साथ प्राप्त होता है। इन अभिलेखों में गुप्त संवत् 156, 163, 170, 191, 192, 199, 209 का उल्लेख है।

गुप्त-संवत् को वलभी-संवत् भी कहा गया है। विद्वानों का मत है कि वलभी नरेश गुप्त सम्राटों के अधीन रहे थे और उन्होंने गुप्त सम्राटों के गुप्त-संवत् को अपना लिया। गुप्त सम्राटों के पतन के पश्चात् वलभी के मैत्रक नरेशों ने स्वतंत्र होने पर वलभी में प्रचलित गुप्त-संवत् को ही वलभी-संवत् का नाम दे दिया। वस्तुतः वलभी या मैत्रक नरेशों के अभिलेखों में तिथियां गुप्त-संवत् में दी गई हैं। यथा द्रोणसिंह के ताम्रपट्ट अभिलेख में गुप्त वलभी संवत् 183 तथा धरसेन द्वितीय के मालिया ताम्रपट्ट अभिलेख में गुप्त वलभी संवत् 252 उत्कीर्ण है।

इस संवत् का प्रचलन नेपाल से काठियावाड़ तक था। गुप्त संवत् का अंतिम लेख वलभी (गुप्त) संवत् 945 (1265 ईस्वी) का प्राप्त हुआ है। इसके पश्चात गुप्त-संवत् का प्रचार समाप्तप्राय हो गया।

• • •

संदर्भ ग्रन्थ सूची

- अभिलेखमञ्जूषा, रणजीत सिंह सैनी, न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन दिल्ली 2000
- उत्कीर्णलेखपञ्चकम्, झा बन्धु, वाराणसी, 1968
- उत्कीर्णलेखपञ्चकम्, जियालाल कम्बोज, ईस्टर्न बुक लिंकर्स दिल्ली 1987
- भारतीय अभिलेख, एस०एस०राणा, भारतीय विद्या प्रकाशन 1978
- भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गौरीशंकर हीराचंद ओझा अजमेर, 1918
- भारतीय पुरालिपि, राजबली पांडेय, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 1978
- भारतीय पुरालिपि शास्त्र, जार्ज० यूलर (हिंदी अनुवादक) मंगलनाथ सिंह मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, 1966
- भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, शिव स्वरूप सहाय मोतीलाल बनारसीदास 1999
- Select Inscriplions (Vol. I) D.C- Sircar Calcutta, 1965
- Indian Epigraphy, D. C. Sircar, Motilal Banarsidas 1965, दिल्ली

• • •

Detail of the Core Course for Sanskrit

C-8

Indian Epigraphy, Paleography and Chronology

Total 56 Credits

A. Prescribed Course :

Section 'A'	Epigraphy	14 Credits
Section 'B'	Paleography	14 Credits
Section 'C'	Study of Selected Inscription	18 Credits
Section 'D'	Chronology	10 Credits

B. Course Objectives :

This course aims to acquaint the students with the epigraphical journey in Sanskrit, the only source which directly reflects the society, politics, geography and economy of the time. The course also seeks to help students to know the different styles of Sanskrit writing.

C. Unit-Wise Division :

Section 'A'
Epigraphy

Unit I	Introduction to Epigraphy and Types of Inscriptions	04 Credits
Unit II	Importance of Indian Inscriptions in the reconstruction of Ancient Indian History and Culture	04 Credits
Unit III	History of Epigraphical Studies in India	02 Credits
Unit IV	History of Decipherment of Ancient Indian Scripts (Contribution of Scholars in the field of epigraphy) : Fleet, Cunninghum, Princep, Buhler, Ojha, D.C. Sircar	04 Credits

Section 'B'
Paleography

Unit I	Antiquity of the Art of Writing	04 Credits
Unit II	Writing Materials, Inscribers and Library	04 Credits
Unit III	Introduction to Ancient Indian Scripts	06 Credits

Section 'C'
Study of Selected Inscriptions

Unit I	Aśoka's Giranāra Rock Edict I	02 Credits
	Aśoka's Sāranātha Pillar Edict	02 Credits
Unit II	Girnāra Inscription of Rudra-dāman	08 Credits
Unit III	Eran Pillar Inscription of Samudra-gupta	04 Credits
	Mehrauli Iron Pillar Inscription of Candra	04 Credits
Unit IV	Delhi Topra Edict of Bīsaladeva	02 Credits

Section 'D'
Chronology

Unit I	General Introduction to Ancient Indian Chronology	03 Credits
Unit II	System of Dating the Inscriptions (Chronograms)	03 Credits
Unit III	Main Eras used in Inscriptions - Vikrama Era, Śaka Era and Gupta Era	04 Credits

D. Recommended Books/Readings :

1. अभिलेखमञ्जूषा, रणजीत सिंह सैनी, न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन, दिल्ली–2000
2. उत्कीर्णलेखपञ्चकम्, झा बन्धु, वाराणसी, 1968
3. उत्कीर्णलेखस्तबकम्, जियालाल कम्बोज, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली
4. भारतीय अभिलेख, एस.एस. राणा, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 1978

5. भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, अजमेर, 1918
6. Selected Inscriptions (vol. I) - D.C. Sircar, Calcutta, 1965
7. नारायण, अवध किशोर एवं ठाकुरप्रसाद वर्मा : प्राचीन भारतीय लिपिशास्त्र और अभिलेखिकी, वाराणसी, 1970
8. पाण्डे, राजबली : भारतीय पुरालिपि, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1978
9. ब्यूलर, जॉर्ज : भारतीय पुरालिपि शास्त्र, (हिन्दी अनु०) मङ्गलनाथ सिंह, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1966
10. मुले, गुणाकर : अक्षरकथा, प्रकाशनविभाग, भारत सरकार, दिल्ली, 2003
11. राही, ईश्वरचन्द : लेखनकला का इतिहास (खण्ड 1-2), उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 1983
12. सरकार, डी.सी. : भारतीय पुरालिपिविद्या, (हिन्दी अनु०) कृष्णदत्त वाजपेयी, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, 1996
13. सहाय, शिवस्वरूप : भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, Dani, Ahmad Hasan : *Indian Paleography*, Oxford, 1963
14. Pillai, Swami Kannu & K.S. Ramchandran : *Indian Chronology (Solar, Lunar and Planetary)*, Asian Educational Service, 2003
15. Satyamurty, K. : *Text Book of Indian Epigraphy*, Lower Price Publication, Delhi, 1992

Note : Teachers are also free to recommend any relevant books/articles/e-resource if needed.

• • •

लेखिका परिचय

डॉ० (श्रीमती) अमिता शर्मा की विद्यालयीय शिक्षा (President's Estate school) व महाविद्यालयीय शिक्षा (इंद्रप्रस्थ महाविद्यालय) दिल्ली में हुई। निरंतर प्रथम श्रेणी तथा 'ए' ग्रेड प्राप्त करने के कारण राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान द्वारा एम० फिल० और पी० एच० डी० के शोध कार्य हेतु छात्रवृत्ति प्राप्त हुई। इनका शोध कार्य संस्कृत जगत् के विश्वविख्यात विद्वान् व संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय के भूतपूर्व अध्यक्ष प्रो० सत्यपाल नारंग जी के निर्देशन हुआ। इन्होंने दिल्ली विश्वविद्यालय के NCWEB (Non-Collegiate Women's Education Board) इंद्रप्रस्थ, लक्ष्मीबाई तथा कालिन्दी महाविद्यालयों में अध्यापन कार्य किया। पंजाब विश्वविद्यालय चंडीगढ़ में यू०जी०सी० रिसर्च एसोसिएट 1989 से 1997 तक अध्यापन व शोध कार्य किया। हांगकांग विश्वविद्यालय में महात्मा बुद्ध विषयक project पर कार्य किया। दिल्ली संस्कृत अकादमी द्वारा संस्कृत सेवा सम्मान तथा संस्कृत समाराधक सम्मान से सम्मानित डॉ० शर्मा ने कक्षा पांचवी, छठी, सातवीं व आठवीं के लिए 'जीवन-संस्कृतम्' नाम से चार पुस्तकें लिखी। राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में सोलह शोध पत्र प्रस्तुत किए। इनके 12 शोध पत्र Journal of Ganganath Jha Kendriya Sanskrit Vidyapeeth, Allahabad, विश्वसंस्कृतम्, सागरिका, शोध प्रभा तथा पंजाब विश्वविद्यालय Research Bulletin आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित है। इनके अध्ययन अध्यापन का मुख्य क्षेत्र अभिलेखशास्त्र [illegible]

पुस्तक प[illegible]

"Indian Epigraphy, Paleography and Chronology" यह विषय CBCS के C-8 का पत्र है। इस पत्र का उद्देश्य विद्यार्थियों को प्राचीन अभिलेख, पुरालेख तथा कालक्रम पद्धति से परिचित कराना है। संस्कृत विषय के परंपरागत अध्ययन के साथ प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति, लिपि, तिथिक्रम, पुरालिपि आदि विषयों का ज्ञान प्राप्त करना छात्रों के लिए भविष्य में उपयोगी सिद्ध होगा। छात्रों के लिए सर्वथा नवीन विषय होने के कारण विषय को सरल व रुचिकर रुप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी-221001
csp_naveen@yahoo.co.in

ISBN : 978-93-86554-48-2

₹ 145/-